शैक्षिक मनोविज्ञान – अधिगम और अधिगम की प्रक्रिया

D.El.Ed (SHIKSHA SNATAK)

201

द्वितीय सेमिस्टर

शिक्षा विभाग

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

विषयांश इकाईवार –

इकाई 1. शिक्षा मनोविज्ञान

1.1 मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना
1.2 मनोविज्ञान की परिभाषा, स्वरूप एवं शाखाएं
1.3 शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध
1.4 शिक्षा मनोविज्ञान–परिभाषा एवं आवश्यकता
1.5 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र
1.6 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियां
अ– आत्मनिष्ठ – अन्तर्दर्शन,
ब– वस्तुनिष्ठ – निरीक्षण, जीवन इतिहास (केस स्टडी),
प्रश्नावली, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रयोग विधि, निर्धारण मापनी, मनोचिकित्सीय विधि

इकाई 2. सीखना या अधिगम

2.1 अर्थ, नियम एवं सिद्धांत– पावलाव, कोहलर, थार्नडाइक
2.2 अ– प्रयास एवं भूल सिद्धांत
ब– मेज (Maize) उपकरण के प्रयोग द्वारा सिद्धांत का सत्यापन
2.3 सीखने का स्थानांतरण
2.4 सीखने का प्रकार
2.5 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने का महत्व

इकाई 3. सीखने को प्रभावित करने वाले कारक – अवधान एवं रूचि

3.1 अवधान, अर्थ, विशेषताए, प्रकार
3.2 अवधान भंग होने के कारण और उपाय
3.3 अवधान का विस्तार ज्ञात करने हेतु प्रयोग
3.4 रूचि, अर्थ, विशेषताएं प्रकार
3.5 सीखने में रूचि बनाए रखने के उपाय
3.6 रूचि ज्ञात करने हेतु परीक्षण
अ– शैक्षिक रूचि प्रपत्र – कुलश्रेष्ठ

इकाई 4. अधिगम में अभिप्रेरणा

4.1 अर्थ एवं प्रकार
4.2 अभिप्रेरणा के सिद्धांत
4.3 अभिप्रेरणा का सीखने में महत्व
4.4 अभिप्रेरणा की विधियां

इकाई 5. स्मृति व विस्मृति

5.1 स्मृति का अर्थ एवं उसके अवयव
5.2 अच्छी स्मृति के लक्षण एवं प्रयोग तथा उन्नति के उपाय
5.3 विस्मृति का कारण, महत्व
5.4 विस्मृति कम करने का उपाय

इकाई 6. व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन
- 6.1 अर्थ एवं प्रकार
- 6.2 संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं
- 6.3 प्रभावित करने वाले कारक
- 6.4 व्यक्तित्व मापन की विधियां
- 6.5 वंशानुक्रम एवं वातावरण – अर्थ और महत्व

इकाई 7. बुद्धि एवं बुद्धि मापन
- 7.1 परिचय, परिभाषा एवं सिद्धांत
- 7.2 बुद्धि–लब्धि एवं उसका मापन
- 7.3 बुद्धि परीक्षण के प्रकार
- 7.4 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता

इकाई 8. अभिक्षमता एवं अभिक्षमता मापन
- 8.1 अर्थ, परिभाषा एवं महत्व
- 8.2 मापन (अभिक्षमता परीक्षण द्वारा)
- 8.3 अभिक्षमता परीक्षणों के व्यावहारिक उपयोग

इकाई 9. सृजनात्मकता
- 9.1 अर्थ एवं परिभाषा
- 9.2 सृजनात्मक बालक की पहचान
- 9.3 शिक्षा में सृजनात्मकता की उपयोगिता
- 9.4 सृजनात्मकता के परीक्षण

इकाई 10. (अ) विशिष्ट बालकों का मनोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा
- 10(अ).1 प्रतिभाशाली बालक
- 10(अ).2 पिछड़े बालक
- 10(अ).3 निःशक्त बालक
- 10(अ).4 समस्यात्मक बालक
- 10(अ).5 बाल अपराध-- कारण एवं प्रकार

(ब) निर्देशन एवं परामर्श
- 10(ब).1 अर्थ, परिभाषा, प्रकार, महत्व
- 10(ब).2 विशिष्ट बालकों हेतु निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता एवं महत्व
- 10(ब).3 शैक्षिक निर्देशन की उपयोगिता

संदर्भ ग्रन्थ –

1. शिक्षा मनोविज्ञान – सुरेश भटनागर
2. शिक्षा मनोविज्ञान – पी.डी. पाठक
3. शिक्षा मनोविज्ञान – एस.एस. माथुर
4. शिक्षा मनोविज्ञान – रामनाथ शर्मा
5. Educational Psychology - O' kelly

इकाई– एक

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई –1. शिक्षा मनोविज्ञान।

विषयांश –

1.1 मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना।
1.2 मनोविज्ञान की परिभाषा, स्वरूप एवं शाखाएं।
1.3 शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध।
1.4 शिक्षा मनोविज्ञान– परिभाषा एवं आवश्यकता।
1.5 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र।
1.6 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियां।

प्रिय छात्राध्यापक!

प्रस्तुत इकाई में हम मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना, परिभाषा, स्वरूप एवं शाखाएं, शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध, क्षेत्र एव विधियों का अध्ययन करेंगे।

ज्ञानं विज्ञान तथा सांस्कृतिक कार्यों की प्राचीनतम धरोहर भारत में है। प्राचीनतम शिक्षा तथा शिक्षण व्यवस्था का जन्म भारत में ही हुआ। प्राचीन ग्रंथों में शिक्षा तथा मनोविज्ञान के अनेक तत्वों का वर्णन मिलता है। पुराणों, स्मृतियों, दर्शन में मनोविज्ञान पर आधारित अनेक शिक्षण विधियों का उल्लेख है। मानव स्वभाव को अभिव्यक्त करने वाले संवेग तथा मूल प्रवृत्तियों का विस्तार से प्राचीन ग्रंथों में पूर्ण व्याख्या के साथ वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में आचार्य, मानव के व्यवहार की समस्याओं से पूर्ण परिचित थे। शिक्षा के द्वारा वे उन व्यावहारिक समस्याओं को हल करते थे।

यह सच है कि शिक्षा, मनोविज्ञान से कभी पृथक नहीं रही है। मनोविज्ञान चाहे दर्शन के रूप रहा हो, वह शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास करने में सहायक रहा है।

1.1 मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना :–

भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास अति प्राचीन हैं। भारतीय परम्परा में दर्शन, मनोविज्ञान और शिक्षा को अलग कर विवेचन करने की चेष्टा नहीं की गई। यह सदैव ज्ञान के स्थानान्तरण की त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित होती रही है।

भारतीय परम्परा में शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय जीवन के सभी चेतन–अवचेतन व्यवहार एवं चेष्टाएँ हैं। भारतीय संदर्भ में मनोविज्ञान केवल मन और व्यवहार तक सीमित न रहकर मन से परे आत्मतत्व तथा सभी प्राणी जगत के व्यवहार का अध्ययन और विकास समाहित किए हुए हैं। वेद, उपनिषद, श्री मद्‌भगवत गीता आदि सभी ग्रन्थ मनोविज्ञान के प्रमाणित ग्रन्थ हैं।

हिन्दू मनोविज्ञान का मूल आधार वेद ही हैं। वेदों मे इसे आध्यात्म विद्या भी कहा गया है, क्योंकि यह ज्ञान आध्यात्मिक विकास और दिव्य जीवनयापन का सशक्त साधन है।

वेदों का अन्तिम भाग उपनिषद् हैं, जिसमें पुरूष जो अनन्त शक्ति है, सर्वत्र व्याप्त हैं, संसार का रचियता और उस पर काल का स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता हैं। गीता में अनेक ऐसी बातें हैं जो उपनिषदों में भी मिलती हैं। गीता व्यवहारिक जीवन दर्शन पर बल देती है।

भारतीय मनोविज्ञान में जीवन के अन्तः और बाह्‌य दोनों ही पक्षों की महत्ता हैं। अन्तः पक्ष की अध्ययन प्रणाली में व्यक्ति निष्ठता (Subjectivity) और बाह्य पक्ष की अध्ययन विधि में वस्तुनिष्ठता (Objectivity) रहती है। प्रायः यहाँ व्यक्तिनिष्ठता भी उतनी ही प्रमाणिक रहती है जितनी की वस्तुनिष्ठता होती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन हैं। दूसरे शब्दों में मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो क्रमबद्ध (Systematically) रूप से प्रेक्षणीय व्यवहार (Observable Behaviour) का अध्ययन करना है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक एवं दैहिक (Mental and physical) प्रक्रियाओं यथा चिन्तन भाव एवं घटनाओं से उनका सम्बन्ध जोड़कर अध्ययन करना है।

मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना की विशेषताएं :-

1. आत्म तत्व को पहचानना (Identification of self)
2. आध्यात्मिक मनोविज्ञान (Spiritual Psychology)
3. योग का महत्व (Importance of Yoga)
4. ध्यान का महत्व (Importance of Meditation)
5. रहस्यवाद का मनोविज्ञान (Psychology of Mystirism)
6. प्राकृतिक व्यवस्था का समावेश (Inclusion of natural system)
7. गीता में मनोविज्ञान (Psychology in Geeta)

8. वेदों में मनोविज्ञान (Psychology of Vedas)

9. शारीरिक एवं मानसिक विकास की अवधारणा (Concept of Physical and mental development)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संकल्पना में, मनोविज्ञान में उन सभी तत्वों को सम्मिलित किया गया है, जो कि वर्तमान समय में विद्यमान है। आज का मनोविज्ञान प्राचीन मनोविज्ञान की ही देन है। सामान्यतः वर्तमान एवं भारतीय संकल्पना में मनोविज्ञान में एक अन्तर पाया जाता है। मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में रहस्यवाद समाहित था वहीं वर्तमान मनोविज्ञान में रहस्यवाद का कोई स्थान नहीं है।

वर्तमान समय के मनोविज्ञान पर विचार किया जाये तो यह मनोविज्ञान प्राचीनकाल के मनोविज्ञान की ही देन माना जा सकता है। प्राचीनकाल के मनोविज्ञान में वे सभी मनोवैज्ञानिक तथ्य समाहित हैं, जो कि आज के मनोविज्ञान में समाहित हैं। आज बालक के अवधान को केन्द्रित करने के लिए कक्षा में अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं परन्तु प्राचीनकाल में छात्रों का अवधान केन्द्रित करने के लिए उनको योग की शिक्षा प्राथमिक स्तर पर दी जाती थी।

वर्तमान मनोविज्ञान में संवेगात्मक स्थिरता के उपाय के रूप में अनेक प्रकार के व्यवहारिक एवं शैक्षिक उपाय बताये जाते हैं परन्तु मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में योग के आधार पर ही मनोवृत्ति को स्थिर करना सिखाया जाता था जिससे कि स्वाभाविक रूप से छात्र का मन स्थिर हो जाय तथा उसमें संवेगात्मक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न न हो।

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि मनोविज्ञान में उन सभी तथ्यों को आधार माना गया है, जो कि मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में विद्यमान है।

1.2 मनोविज्ञान की परिभाषाएं :–

मनोविज्ञान का अर्थ – "मन के विज्ञान" को मनोविज्ञान कहा जाता हैं। भारतीय वाड्मय में उसकी प्रकृति पश्चिम के मनोविज्ञान के समान शैक्षणिक (Educational) नहीं होकर आध्यामित्क (Spiritual) हैं। अतः उसे "मन का ज्ञान" कहना अधिक सार्थक प्रतीत होता है। प्राचीन भारत में मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान और चेतना के विज्ञान के रूप में लिया जाता है। भारतीय मनीषी आध्यात्मिक साधना, जिसमें ध्यान, समाधि और योग भी सम्मिलित था, के द्वारा जो अनुभव एवं अनुभूतियां प्राप्त करते थे उनके आधार पर मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भी तलाशा जाता था।

यूं तो पाश्चात्य मनोविज्ञान का उद्‌भव भी दर्शन से हुआ हैं। मनोवैज्ञानिक मन के अनुसार "मनोविज्ञान, व्यवहार और अनुभूति का एक निश्चित विज्ञान है जिसमें व्यवहार को अनुभूति के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है"।

मनोविज्ञान की विकास की लम्बी यात्रा के दौरान मनोवैज्ञानिकों एवं मनीषियों ने चिंतन मनन किया तथा मनोविज्ञान के स्वरूप को निर्धारित किया। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को निम्नानुसार परिभाषित किया है।

1. बोरिंग लैंगफेल्ड व वेल्ड– "मनोविज्ञान मानव प्रकृति का अध्ययन है।"
2. गैरिसत व अन्य– "मनोविज्ञान का संबंध प्रत्यक्ष मानव व्यवहार से है।"
3. स्किनर– "मनोविज्ञान व्यवहार और अनुभव का विज्ञान है।"
4. मन– "आधुनिक मनोविज्ञान का संबधं व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है।"
5. पिल्सबरी– "मनोविज्ञान की सबसे संतोषजनक परिभाषा मानव व्यवहार के विज्ञान के रूप में की जा सकती है।"
6. क्रो एवं क्रो– "मनोविज्ञान मानव व्यवहार और मानव संबंधों का अध्ययन है।"
7. वुडवर्थ– "मनोविज्ञान वातावरण के संबंध में व्यक्तियों की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।"
8. जेम्स– "मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा चेतना के वर्णन और व्याख्या के रूप में की जा सकती है।"

मनोविज्ञान की शाखाएंः–

मनोविज्ञान एक प्रगतिशील विज्ञान है। शैशवकाल में होते हुए भी इस विज्ञान ने प्रयोग के क्षेत्र में अद्वितीय उन्नति की है। मनोविज्ञान को दर्शन का अंग समझा जाता है और दर्शानिकों द्वारा ही यह विज्ञान पढ़ाया जाता था। आज देश देशांतर में मनोविज्ञान की बड़ी–बड़ी प्रयोगशालएं स्थापित हो चुकी है और बाल मनोविज्ञान, पशु मनोविज्ञान, चिकित्सा मनोविज्ञान अर्थात मनोविज्ञान के अंग–अंग पर खोज या प्रयोग जारी है। कुछ ही वर्षों के समय में इस विज्ञान के अनेक विभाग हो चुके है और इन विभागों की भी अनेक शाखाएं उत्पन्न हो चुकी है। यों तो मनोविज्ञान की बहुत सी शाखाएं है किन्तु उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैः–

1. सामान्य मनोविज्ञान।
2. पशु मनोविज्ञान।
3. तुलनात्मक मनोविज्ञान।
4. वैयक्तिक मनोविज्ञान।
5. सामाजिक मनोविंज्ञान।
6. मनोविज्ञान अथवा विश्लेषण मनोविज्ञान।
7. असामान्य मनोविज्ञान।

8. चिकित्सा मनोविज्ञान।
9. बाल मनोविज्ञान।
10. उद्योग मनोविज्ञान।
11. वाणिज्य मनोविज्ञान।
12. शिक्षा मनोविज्ञान।

1.3 शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध :–

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्किनर के अनुसार शिक्षा मनोविज्ञान का आरम्भ अरस्तु के समय से माना जा सकता है। शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध सीखने एवं सीखने की विधियों अर्थात पढ़ाने से है।

शिक्षा तथा मनोविज्ञान ज्ञान की दो स्पष्ट शाखाएं है, परंतु इन दोनो का परस्पर घनिष्ठ संबंध हैं आधुनिक शिक्षा का आधार मनोविज्ञान है। बच्चे को उसकी रूचियों, रूझानों, सम्भावनाओं तथा व्यक्तित्व का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके शिक्षा दी जाती है। आज शिक्षा तथा मनोविज्ञान एक दूसरे के पूरक है। स्किनर का मत है कि "शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा का एक आवश्यक तत्व है। इसकी सहायता के बिना शिक्षा की गुत्थी सुलझाई नहीं जा सकती। शिक्षा तथा मनोविज्ञान दोनों का संबंध व्यवहार के साथ है। मनोविज्ञान की खोजों की शिक्षा के दूसरे पहलुओं पर गहरी छाप है।"

शिक्षा तथा मनोविज्ञान सिद्धांत तथा व्यवहार का समन्वय है, शिक्षा तथा मनोविज्ञान का पारस्परिक संबंध का ज्ञान मानव के समन्वित संतुलित विकास के लिये आवश्यक है। शिक्षा के समान कार्य, मनोविज्ञान क सिद्धांतों पर आधारित है। क्रो एण्ड क्रो के अनुसार "मनोविज्ञान, वातावरण के सम्पर्क में होने वाले मानव व्यवहारों का विज्ञान हैं" मनोविज्ञान सीखने से संबंधित मानव विकास की व्याख्या करता है। शिक्षा, सीखने की प्रक्रिया को करने की चेष्टा प्रदान करती है। शिक्षा मनोविज्ञान सीखने के क्यों और कब से संबंधित है।"

शिक्षा और मनोविज्ञान को जोड़ने वाली कड़ी है "मानव व्यवहार"। इस संबंध में दो विद्वानों के विचार दृष्टव्य है :–

1. ब्राउन– "शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है।"
2. पिल्सबरी– "मनोविज्ञान मानव व्यवहार का विज्ञान है।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों का संबंध मानव व्यवहार से है। शिक्षा मानव व्यवहार में परिवर्तन करके उसे उत्तम बनाती है। मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। इस प्रकार शिक्षा और मनोविज्ञान के संबंध होना स्वाभाविक है एवं इस संबंध में मनोविज्ञान को आधार प्रदान करता है। शिक्षा को अपने प्रत्येक कार्य के लिए मनोविज्ञान की स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती है। बी.एन. झा ने ठीक ही लिखा है- "शिक्षा जो कुछ करती है और जिस प्रकार वह किया जाता है उसके लिये इसे मनोवैज्ञानिक खोजों पर निर्भर होना पड़ता है।

मनोविज्ञान को यह स्थान इसलिए प्राप्त हुआ है क्योंकि उसने शिक्षा के सब क्षेत्रों को प्रभावित करके उनमें क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया है। इस संदर्भ में रायन के ये सारगर्भित वाक्य उल्लेखनीय है-- "आधुनिक समय के अनेक विद्यालयों में हम भिन्नता और संघर्ष का वातावरण पाते है। अब इनमें परम्परागत, औपचारिकता, मजबूर, मौन, तनाव और दण्ड की अधिकता दर्शित नहीं होती है।" यह सब शिक्षा मनोविज्ञान के उपयोग के कारण संभव हुआ है।

मनोविज्ञान का शिक्षा के साथ संबंध :– संक्षिप्त वर्णन

1. **मनोविज्ञान तथा शिक्षा के उद्देश्य** – मनोविज्ञान के द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है अथवा नहीं। शिक्षक ने अपने उद्देश्य में कितनी सफलता प्राप्त की है यह भी मनोविज्ञान के द्वारा जाना जा सकता है।
2. **मनोविज्ञान तथा पाठ्यक्रम** – मनोविज्ञान ने बालक के सर्वांगींण विकास में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को महत्वपूर्ण बनाया है। इसीलिये विद्यालयों में खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की विशेष रूप से व्यवस्था की जाती है।
3. **मनोविज्ञान तथा पाठ्य पुस्तकें** – पाठ्य पुस्तकों का निर्माण बालक की आयु, रूचियों और मानसिक योग्यताओं को ध्यान में रखकर करना चाहिये।
4. **मनोविज्ञान तथा समय सारणी** – शिक्षा में मनोविज्ञान द्वारा दिया जाने वाला मुख्य सिद्धान्त है कि नवीन ज्ञान का विकास पूर्व ज्ञान के आधार पर किया जाना चाहिये।
5. **मनोविज्ञान तथा शिक्षा विधियां** – मनोविज्ञान के द्वारा शिक्षण विधियों में बालक के स्वयं सीखने पर बल दिया गया। इस उद्देश्य से 'करके सीखना', खेल द्वारा सीखना, रेड़ियो पर्यटन, चलचित्र आदि को शिक्षण विधियों में स्थान दिया गया।
6. **मनोविज्ञान तथा अनुशासन** – मनोविज्ञान द्वारा प्रेम, प्रशंसा और सहानुभूति को अनुशासन के लिये एक अच्छा आधार माना है।
7. **मनोविज्ञान तथा अनुसंधान** – मनोविज्ञान ने सीखने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में खोज करके अनेक अच्छे नियम बनायें हैं। इनका प्रयोग करने से बालक कम समय में और अधिक अच्छी प्रकार से सीख सकता है।
8. **मनोविज्ञान तथा परीक्षायें** – मनोविज्ञान द्वारा बुद्धि परीक्षा, व्यक्तित्व परीक्षा तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षा जैसी नई विधियों को मूल्यांकन के लिये चयनित किया गया है।
9. **मनोविज्ञान तथा अध्यापक** – शिक्षा में तीन प्रकार के सम्बन्ध होते हैं -- बालक तथा शिक्षक का सम्बन्ध, बालक और समाज का सम्बन्ध तथा बालक और विषय का सम्बन्ध। शिक्षा मे सफलता तभी मिल सकती है जब इन तीनों का सम्बन्ध उचित हो।

मनोविज्ञान का शिक्षा में योगदान :–

1. बालक का महत्व।
2. बालकों की विभिन्न अवस्थाओं का महत्व।
3. बालकों की रूचियों व मूल प्रवृत्तियों का महत्व।
4. बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का महत्व।
5. पाठ्यक्रम में सुधार।
6. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं पर बल।
7. सीखने की प्रक्रिया में उन्नति।
8. मूल्यांकन की नई विधियां।
9. शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति व सफलता।
10. नये ज्ञान का आधारपूर्ण ज्ञान।

1.4 शिक्षा मनोविज्ञान– परिभाषा एवं आवश्यकता :–

शिक्षा मनोविज्ञान वह विधायक विज्ञान है जो शिक्षा की समस्याओं का विवेचन विश्लेषण एवं समाधान करता है।

शिक्षा मनोविज्ञान से कभी पृथक नहीं रही है। मनोविज्ञान चाहे दर्शन के रूप में रहा हो, उसने शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास करने में सहायता की है।

शिक्षा मनोविज्ञान के आरंभ के विषय में लेखकों में कुछ मतभेद हैं। कोलेसनिक ने इस विज्ञान का आरंभ ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी के यूनानी दार्शनिको से माना है, उनमें प्लेटो को भी स्थान दिया है। कोलेसनिक के शब्दों में– "मनोविज्ञान और शिक्षा के सर्वप्रथम व्यवस्थित सिद्धांतों में एक सिद्धांत प्लेटों का भी था।"

कोलेसनिक के विपरीत स्किनर ने शिक्षा मनोविज्ञान का आरंभ प्लेटो के शिष्य अरस्तु के समय से मानते हुए लिखा है "शिक्षा मनोविज्ञान का आरंभ अरस्तु के समय से माना जा सकता है। पर शिक्षा मनोविज्ञान की उत्पत्ति यूरोप में पेस्त्रला जी, हरबर्ट और फ्राबेल के कार्यों से हुई जिन्होंने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया।" स्किनर के शब्दों में "शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका संबंध पढ़ने व सीखने से है।"

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ :–

शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के सिद्धांतों का शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग है, स्किनर के शब्दो में 'शिक्षा मनोविज्ञान उन खोजों का शैक्षिक परिस्थितियों में प्रयोग करता है जो कि विशेषतया मानव प्राणियों के अनुभव और व्यवहार से संबंधित है।'

शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दों के योग से बना है - 'शिक्षा' और 'मनोविज्ञान'। अतः इसका शाब्दिक अर्थ है – शिक्षा संबंधी मनोविज्ञान। दूसरे शब्दों में, यह मनोविज्ञान का व्यावहारिक रूप है और शिक्षा की प्रक्रिया में मानव व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। अतः हम स्किनर के शब्दों में कह सकते है "शिक्षा मनोविज्ञान अपना अर्थ शिक्षा से, जो सामाजिक प्रक्रिया है और मनोविज्ञान से, जो व्यवहार संबंधी विज्ञान है, ग्रहण करता है।" .

शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ का विश्लेषण करने के लिए स्किनर ने अधोलिखित तथ्यों की ओर संकेत किया है:–

1. शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र, मानव व्यवहार है।
2. शिक्षा मनोविज्ञान खोज और निरीक्षण से प्राप्त किए गए तथ्यों का संग्रह है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान में संग्रहीत ज्ञान को सिद्धांतो का रूप प्रदान किया जा सकता है.
4. शिक्षा मनोविज्ञान ने शिक्षा की समस्याओं का समाधान करने के लिए अपनी स्वयं की पद्धतियों का प्रतिपादन किया है।
5. शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धांत और पद्धतियां शैक्षिक सिद्धांतों और प्रयोगों को आधार प्रदान करते है।

शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाएं :–

शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धांतों का शिक्षा में प्रयोग ही नहीं करता अपितु शिक्षा की समस्याओं को हल करने में योग देना है। इसलिए शिक्षा विदो ने शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन, विश्लेषण, विवेचन तथा समाधान के लिये इसकी परिभाषाएं इस प्रकार दी है।

1. **स्किनर** – शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा से संबंधित संपूर्ण व्यवहार और व्यक्तित्व आ जाता है।
2. **क्रो एण्ड क्रो** – शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तक सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करता है।
3. **सॉरे व टेलफोर्ड** – शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य संबंध सीखने से है। वह मनोविज्ञान का वह अंग है जो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की वैज्ञानिक खोज से विशेष रूप से संबंधित है।

आवश्यकता :–

कैली के अनुसार केली ने शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता को निम्नानुसार बताया है:–

1. बालक के स्वभाव का ज्ञान प्रदान करने हेतु।
2. बालक के वृद्धि और विकास हेतु।
3. बालक को अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने के लिए.

4. शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों और प्रयोजनों से परिचित करना।
5. सीखने और सिखाने के सिद्धांतों और विधियों से अवगत कराना।
6. संवेगों के नियंत्रण और शैक्षिक महत्व का अध्ययन।
7. चरित्र निर्माण की विधियों और सिद्धांतों से अवगत कराना।
8. विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों में छात्र की योग्यताओं का माप करने की विधियों में प्रशिक्षण देना।
9. शिक्षा मनोविज्ञान के तथ्यों और सिद्धांतों की जानकारी के लिए प्रयोग की जाने वाली वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान प्रदान करना।

1.5 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्रः—

हमने यह देखा कि विभिन्न लेखकों ने शिक्षा मनोविज्ञान की भिन्न–भिन्न परिभाषाएं दी है। इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र के बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा मनोवैज्ञानिक एक नया तथा पनपता विज्ञान है। इसके क्षेत्र अनिश्चित है और धारणाएं गुप्त है। इसके क्षेत्रों में अभी बहुत सी खोज हो रही है और संभव है कि शिक्षा मनोविज्ञान की नई धारणाएं, नियम और सिद्धांत प्राप्त हो जाये। इसका भाव यह है कि शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र और समस्याएं अनिश्चित तथा परिवर्तनशील है। चाहे कुछ भी हो निम्नलिखित क्षेत्र या समस्याओं को शिक्षा मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है। क्रो एण्ड क्रो– "शिक्षा मनोविज्ञान की विषय सामग्री का संबंध सीखने को प्रभावित करने वाली दशाओं से है।"

1. व्यवहार की समस्या।
2. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समस्या।
3. विकास की अवस्थाएं।
4. बच्चों का अध्ययन।
5. सीखने की क्रियाओं का अध्ययन।
6. व्यक्तित्व तथा बुद्धि।
7. नाप तथा मूल्यांकन।
8. निर्देश तथा परामर्श।

1.6 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियां :-

शिक्षा मनोविज्ञान को व्यवहारिक विज्ञान की श्रेणी में रखा जाने लगा है। विज्ञान होने के कारण इसके अध्ययन में भी अनेक निधियों का विकास हुआ। ये विधियां वैज्ञानिक हैं। जार्ज व लुण्डबर्ग के शब्दों में "सामाजिक वैज्ञानिकों में यह विश्वास पूर्ण हो गया है कि उनके सामने जो समस्याएँ है उनको

हल करने के लिए सामाजिक घटनाओं के निष्पक्ष एवं व्यवस्थित निरीक्षण, सत्यापन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण का प्रयोग करना होगा। ठोस एवं सफल होने क कारण ऐसे दृष्टिकोण को वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है।"

विधियाँ :--

शिक्षा मनोविज्ञान में अध्ययन और अनुसंधान के लिए सामान्य रूप से जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है उनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:-- चार्ट रूप में प्रस्तुत

शिक्षा मनोविज्ञान की विधियां

आत्मनिष्ठ विधियाँ
(Subjective Method)

1. आत्मनिरीक्षण विधि
2 गाथा वर्णन विधि

वस्तुनिष्ठ विधियाँ
(Objective Method)

1. प्रयोगात्मक विधि
2. निरीक्षण विधि
3. जीवन इतिहास विधि
4. उपचारात्मक विधि
5. विकासात्मक विधि
6. मनोविश्लेषण विधि
7. तुलनात्मक विधि
8. सांख्यिकी विधि
9. परीक्षण विधि
10. साक्षात्कार विधि
11. प्रश्नावली विधि
12. विभेदात्मक विधि
13. मनोभौतिकी विधि

इनमें से कुछ प्रमुख विधियों का निम्नानुसार वर्णन किया गया है

1. आत्म निरीक्षण विधि (अर्न्तदर्शन विधि) :–

आत्म निरीक्षण विधि को अर्न्तदर्शन, अन्तर्निरीक्षण विधि भी कहते है। स्टाउट के अनुसार "अपना मानसिक क्रियाओं का क्रमबद्ध अध्ययन ही अन्तर्निरीक्षण कहलाता है।"

वुडवर्थ ने इस विधि को आत्मनिरीक्षण कहा है। इस विधि में व्यक्ति की मानसिक क्रियाएं आत्मगत होती हे। आत्मगत होने के कारण आत्मनिरीक्षण या अन्तर्दर्शन विधि अधिक उपयोगी होती हे।

लॉक के अनुसार – मस्तिष्क द्वारा अपनी स्वयं की क्रियाओं का निरीक्षण।"

1. परिचय :– पूर्वकाल के मनोवैज्ञानिक अपनी मस्तिष्क क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इसी विधि पर निर्भर थे। वे इसका प्रयोग अपने अनुभवों का पुनः स्मरण और भावनाओं का मूल्यांकन करने के लिये करते थे। वे सुख, दुख, क्रोध और शान्ति, घृणा और प्रेम के समय अपनी भावनाओं और मानसिक दशाओं का निरीक्षण करके उनका वर्णन करते थे।
2. अर्थ :– अन्तर्दर्शन का अर्थ है– "अपने आप में देखना।" इसकी व्याख्या करते हुए बी.एन. झा ने लिखा है "आत्मनिरीक्षण अपने स्वयं के मन का निरीक्षण करने की प्रक्रिया है। यह एक प्रकार का आत्मनिरीक्षण है जिसमें हम किसी मानसिक क्रिया के समय अपने मन में उत्पन्न होने वाली स्वयं की भावनाओं और सब प्रकार की प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण, विश्लेषण और वर्णन करते है।"
3. गुण– मनोविज्ञान के ज्ञान में वृद्धि :– डगलस व हालैण्ड के अनुसार – "मनोविज्ञान ने इस विधि का प्रयोग करके हमारे मनोविज्ञान के ज्ञान में वृद्धि की है।"
4. अन्य विधियों में सहायक :– डगलस व हालैण्ड के अनुसार "यह विधि अन्य विधियों द्वारा प्राप्त किये गये तथ्यों नियमों और सिद्धान्तों की व्याख्या करने में सहायता देती है।"
5. यंत्र व सामग्री की आवश्यकता :– रॉस के अनुसार "यह विधि खर्चीली नहीं है क्योंकि इसमें किसी विशेष यंत्र या सामग्री की आवश्यकता नहीं पड़ती है।"
6. प्रयोगशाला की आवश्यकता :– यह विधि बहुत सरल है। क्योंकि इसमें किसी प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं है। रॉस के शब्दों में "मनोवैज्ञानिकों का स्वयं का मस्तिष्क प्रयोगशाला होता है और क्योंकि वह सदैव उसके साथ रहता है इसलिए वह अपनी इच्छानुसार कभी भी निरीक्षण कर सकता है।"

2 जीवन इतिहास विधि या व्यक्ति अध्ययन विधि (Case study or case history method)–-

व्यक्ति अध्ययन विधि का प्रयोग मनोवैज्ञानिको द्वारा मानसिक रोगियों, अपराधियों एवं समाज विरोधी कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिये किया जाता है। "जीवन इतिहास द्वारा मानव व्यवहार का अध्ययन।" बहुधा मनोवैज्ञानिक का अनेक प्रकार के व्यक्तियों से पाला पडता है: इनमें कोई अपराधी, कोई मानसिक रोगी, कोई झगडालू, कोई समाज विरोधी कार्य करने वाला और कोई समस्या बालक होता है. मनोवैज्ञानिक के विचार से व्यक्ति का भौतिक पारिवारिक व सामाजिक वातावरण उसमें मानसिक

असंतुलन उत्पन्न कर देता है। जिसके फलस्वरूप वह अवांछनीय व्यवहार करने लगता है। इसका वास्तविक कारण जानने के लिए वह व्यक्ति के पूर्व इतिहास की कड़ियों को जोड़ता है। इस उद्देश्य से वह व्यक्ति उसके माता पिता, शिक्षकों, संबंधियों, पड़ोसियों, मित्रों आदि से भेंट करके पूछताछ करता है। इस प्रकार वह व्यक्ति के वंशानुक्रम, पारिवारिक और सामाजिक वातावरण, रूचियों, क्रियाओं, शारीरिक स्वास्थ्य, शैक्षिक और संवेगात्मक विकास के संबंध में तथ्य एकत्र करता है जिनके फलस्वरूप व्यक्ति मनोविकारों का शिकार बनकर अनुचित आचरण करने लगता है। इस प्रकार इस विधि का उद्देश्य व्यक्ति के किसी विशिष्ट व्यवहार के कारण की खोज करना है। क्रो व क्रो ने लिखा है "जीवन इतिहास विधि का मुख्य उद्देश्य किसी कारण का निदान करना है।"

3. वस्तुनिष्ठ विधियां

बहिर्दर्शन या अवलोकन विधि – (Extrospection or observational method)

बहिदर्शन विधि को अवलोकन या निरीक्षण विधि भी कहा जाता है। अवलोकन या निरीक्षण का सामान्य अर्थ है– ध्यानपूर्वक देखना। हम किसी के व्यवहार आचरण एवं क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं आदि को बाहर से ध्यानपूर्वक देखकर उसकी आंतरिक मनःस्थिति का अनुमान लगा सकते है। उदाहरणार्थः– यदि कोई व्यक्ति जोर–जोर से बोल रहा है और उसके नेत्र लाल है तो हम जान सकते है कि वह क्रुद्ध है। किसी व्यक्ति को हंसता हुआ देखकर उसके खुश होने का अनुमान लगा सकते हैं।

निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता, अध्ययन किये जाने वाले व्यवहार का निरीक्षण करता है और उसी के आधार पर वह विषय के बारे में अपनी धारणा बनाता है। व्यवहारवादियों ने इस विधि को विशेष महत्व दिया है।

कोलेसनिक के अनुसार निरीक्षण दो प्रकार का होता है (1) औपचारिक और (2) अनौपचारिक। औपचारिक निरीक्षण नियंत्रित दशाओं में और अनौपचारिक निरीक्षण अनियंत्रित दशाओं में किया जाता है। इनमें से अनौपचारिक निरीक्षण, शिक्षक के लिये अधिक उपयोगी है। उसे कक्षा और कक्षा के बाहर अपने छात्रों के व्यवहार का निरीक्षण करने के लिए अनेक अवसर प्राप्त होते है। वह इस निरीक्षण के आधार पर उनके व्यवहार के प्रतिमानो का ज्ञान प्राप्त करके उनको उपयुक्त निर्देशन दे सकता है।

4. **प्रश्नावली** :– गुड तथा हैट (Good & Hatt) के अनुसार – 'सामान्यत' प्रश्नावली शाब्दिक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की विधि है जिसमें व्यक्ति को स्वयं ही प्रारूप में भरकर देने होते हैं। इस विधि मे प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करके समस्या संबंधी तथ्य एकत्र करना मुख्य होता है। प्रश्नावली एक प्रकार से लिखित प्रश्नों की योजनाबद्ध सूची होती है। इसमें सम्भावित उत्तरों के लिए या तो स्थान रखा जाता है या सम्भावित उत्तर लिखे रहते हैं।

5. साक्षात्कार :–

इस विधि में व्यक्तियों से भेंट कर के समस्या संबंधी तथ्य एकत्रित करना मुख्य होता हैं इस विधि के द्वारा व्यक्ति की समस्याओं तथा गुणों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसमें दो व्यक्तियों में आमने–सामने मौखिक वार्तालाप होता है, जिसके द्वारा व्यक्ति की समस्याओं का समाधान खोजने तथा शारीरिक और मानसिक दशाओं का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

गुड एवं हैट के शब्दों में – "किसी उद्देश्य से किया गया गम्भीर वार्तालाप ही साक्षात्कार है।

6. प्रयोग विधि :–

'पूर्व निर्धारित दशाओं में मानव व्यवहार का अध्ययन।" विधि में प्रयोगकर्ता स्वयं अपने द्वारा निर्धारित की हुई परिस्थितियों या वातावरण में किसी व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है या किसी समस्या के संबंध में तथ्य एकत्र करता है।

7. मनोचिकित्सीय विधि :–

"व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन करके उपचार करना।" इस विधि के द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन करके, उसकी अतृप्त इच्छाओं की जानकारी प्राप्त की जाती है। तदुपरांत उन इच्छाओं का परिष्कार या मार्गान्तीकरण करके व्यक्ति का उपचार किया जाता है और इस प्रकार इसके व्यवहार को उत्तम बनाने का प्रयास किया जाता है।

इकाई सारांश–

- मनोविज्ञान एक प्रगतिशील विज्ञान हैं आधुनिक शिक्षा का आधार मनोविज्ञान है।
- शिक्षा तथा मनोविज्ञान सिद्धांत तथा व्यवहार का समन्वय है।
- शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र और समस्याऐं अनिश्चित और परितर्वनशील हैं।
- शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान के लिये प्रयोग में लायी जाने वाली विधियों को दो भागों में बांटा गया है –
  1) आत्म निरीक्षण विधि।
  2) वस्तुनिष्ठ विधियाँ।

शिक्षा तथा मनोविज्ञान के सम्बन्धो ने शिक्षक, छात्र तथा शैक्षिक परिवेश में कार्य कर रहे व्यक्तियों के ज्ञान तथा कौशल से सम्पन्न किया हैं। शिक्षा को सूक्ष्म तथा व्यापक आयाम प्रदान कर उसे जनोपयोगी तथा व्यक्ति विकास के लिये सार्थक बनाया है।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न 1. मनोविज्ञान की परिभाषायें लिखिए। (कोई दो)

प्रश्न 2. मनोविज्ञान की शाखाएं लिखिए।

प्रश्न 3. मनोविज्ञान का शिक्षा के साथ क्या संबंध है?

प्रश्न 4. शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता लिखिए।

प्रश्न 5. शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र से क्या आशय है?

प्रश्न 6. शिक्षा मनोविज्ञान की कोई दो विधियां लिखिए।

इकाई– 2

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई–2 सीखना या अधिगम

विषयांश–

2.1 – अर्थ, नियम एवं सिद्धांत– पावलाव, कोहलर, थार्नडाइक।

2.2 – (अ) प्रयास एवं भूल का सिद्धांत।

(ब) मेज (**maze**) उपकरण के प्रयोग द्वारा सिद्धांत का सत्यापन।

2.3 – सीखने का स्थानांतरण।

2.4 – शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने का महत्व।

पिछले अध्याय में आपने मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना, परिभाषा, शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध, शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा, आवश्यकता क्षेत्र एवं विधियों के विषय में अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में सीखना या अधिगम का अर्थ, नियम एवं सिद्धांत के विषय में अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने का महत्त्व विषयक जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.1 सीखना या अधिगम का अर्थ :–

सीखना या अधिगम एक व्यापक सतत् एवं जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म के उपरांत ही सीखना प्रारंभ कर देता है और जीवन भर कुछ न कुछ सीखता रहता है। धीरे–धीरे वह अपने को वातावरण से समायोजित करने का प्रयत्न करता है। इस समायोजन के दौरान वह अपने अनुभवों से अधिक लाभ उठाने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया को मनोविज्ञान में सीखना कहते हैं। जिस व्यक्ति में सीखने की जितनी अधिक शक्ति होती है, उतना ही उसके जीवन का विकास होता है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक क्रियाएँ एवं उपक्रियाएँ करता है। अतः सीखना किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है।

उदाहरणार्थ – छोटे बालक के सामने जलता दीपक ले जाने पर वह दीपक की लौ को पकड़ने का प्रयास करता है। इस प्रयास में उसका हाथ जलने लगता है। वह हाथ को पीछे खींच लेता है। पुनः जब कभी उसके सामने दीपक लाया जाता है तो वह अपने पूर्व अनुभव के आधार पर लौ पकड़ने के लिए, हाथ नहीं बढ़ाता है, वरन् उससे दूर हो जाता है। इसी विचार को स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करना कहते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अनुभव के आधार पर बालक के स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है।

सीखना या अधिगम की परिभाषायें :–

1. वुडवर्थ के अनुसार – "सीखना विकास की प्रक्रिया है।"
2. स्किनर के अनुसार – "सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।"
3. जे.पी. गिलफर्ड के अनुसार – "व्यवहार के कारण, व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना है।"
4. कालविन के अनुसार – "पहले से निर्मित व्यवहार में अनुभवों द्वारा हुए परिवर्तन को अधिगम कहते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सीखने के कारण व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है, व्यवहार में यह परिवर्तन बाह्य एवं आंतरिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। अतः सीखना एक प्रक्रिया है जिसमें अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में स्थायी या अस्थाई परिवर्तन दिखाई देता है।

सीखने के नियम :–

ई.एल. थार्नडाइक अमेरिका का प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हुआ है जिसने सीखने के कुछ नियमों की खोज की जिन्हें निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया गया है –

सीखने के नियम

(अ) मुख्य नियम (Primary Laws)	(ब) गौण नियम (Secondary Laws)
अ.1. तत्परता का नियम।	ब.1. बहु–अनुक्रिया का नियम।
2. अभ्यास का नियम – 1) उपयोग का नियम।	2 मानसिक स्थिति का नियम।
2) अनुप्रयोग का नियम।	3 आंशिक क्रिया का नियम।
3. प्रभाव का नियम।	4 समानता का नियम।
	5 साहचर्य परिवर्तन का नियम।

(अ) मुख्य नियम

सीखने के मुख्य नियम तीन है जो इस प्रकार हैं –

1. <u>तत्परता का नियम (Law of Readinesss)</u> – इस नियम के अनुसार जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए पहले से तैयार रहता है तो वह कार्य उसे आनन्द देता है एवं शीघ्र ही सीख लेता है। इसके विपरीत जब व्यक्ति कार्य को करने के लिए तैयार नहीं रहता या सीखने की इच्छा नहीं होती है तो वह झुंझला जाता है या क्रोधित होता है व सीखने की गति धीमी होती है।

2. <u>अभ्यास का नियम (Law of exercise)</u> – इस नियम के अनुसार व्यक्ति जिस क्रिया को बार–बार करता है उस शीघ्र ही सीख जाता है तथा जिस क्रिया को छोड़ देता है या बहुत समय तक नहीं करता उसे वह भूलने लगता है। जैसें– गणित के प्रश्न हल करना, टाइप करना, साइकिल चलाना आदि। इसे उपयोग तथा अनुपयोग (use and disuse) का नियम भी कहते हैं।

3. <u>प्रभाव का नियम (Law of effect)</u>– इस नियम के अनुसार जीवन में जिस कार्य को करने पर व्यक्ति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है या सुख का या संतोष मिलता है उन्हें वह सीखने का प्रयत्न करता है एव जिन कार्यों को करने पर व्यक्ति पर बुरा प्रभाव पडता है उन्हें वह करना छोड़ देता है। इस नियम को सुख तथा दुःख (Pleasure and Pian) या पुरस्कार तथा दण्ड का नियम भी कहा जाता है।

(ब) गौण नियम (Secondary Laws)

1. <u>बहु अनुक्रिया नियम (Law of multiple Reoponse</u> – इस नियम के अनुसार व्यक्ति के सामने किसी नई समस्या के आने पर उसे सुलझाने के लिए वह विभिन्न प्रतिक्रियायेंक र हल ढूढने का प्रयत्न करता है। वह प्रतिक्रियाये तब तक करता रहता है जब तक समस्या का सही हल न खोज ले और उसकी समस्या सुलझ नहीं जाती। इससे उसे संतोष मिलता है थार्नडाइक का प्रयत्न एवं भूल द्वारा सीखने का सिद्धान्त इसी नियम पर आधारित है।

2. <u>मानसिक स्थिति या मनोवृत्ति का नियम</u> **(Law of Partial Activity)–** इस नियम के अनुसार जब व्यक्ति सीखने के लिए मानसिक रूप से तैयार रहता है तो वह शीघ्र ही सीख लेता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति मानसिक रूप से किसी कार्य को सीखने के लिए तैयार नहीं रहता तो उस कार्य को वह सीख नहीं सकेगा।

3. <u>आंशिक क्रिया का नियम</u> **(Law of Partial Analogy)–** इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी समस्या को सुलझाने के लिए अनेक क्रियायें प्रयत्न एवं भूल के आधार पर करता है। वह अपनी अंर्तदृष्टि का उपयोग कर आंशिक क्रियाओं की सहायता से समस्या का हल ढूढ़ लेता है।

4. <u>समानता का नियम</u> **(Law of Analogy)–** इस नियम के अनुसार किसी समस्या के प्रस्तुत होने पर व्यक्ति पूर्व अनुभव या परिस्थितियों में समानता पाये जाने पर उसके अनुभव स्वतः ही स्थानांतरित होकर सीखने में मद्द करते हैं।

5. <u>साहचर्य परिवर्तन का नियम</u> **(Law of Associative Shifting)–** इस नियम के अनुसार व्यक्ति प्राप्त ज्ञान का उपयोग अन्य परिस्थिति में या सहचारी उद्दीपक वस्तु के प्रति भी करने लगता है। जैसे–कुत्ते के मुह से भोजन सामग्री को देख कर लार टपकरने लगती है। परन्तु कुछ समय के बाद भोजन के बर्तन को ही देख कर लार टपकने लगती है।

सीखने के सिद्धांत (Theories of Learning) :–

व्यक्ति के व्यवहार की प्रक्रियाओं में सीखने का महत्वपूर्ण स्थान है। मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की प्रक्रिया का अध्ययन पशुओं एवं व्यक्तियों पर किया। उनके विचार एवं मत ही सीखने के सिद्धांत कहलाते है।

सीखने के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं –

1. अनुकूलित–अनुक्रिया का सिद्धांत (Theary of conditioned Reoponse by Pavlov)
2. सक्रिय अनुबन्ध का सिद्धांत (Theory of operant conditioning by Skinner)
3. उद्दीपन अनुक्रिया का सिद्धांत (Tharhdik Theary of Stimulus Response)
4. सूझ या अर्न्तदृष्टि का सिद्धांत (Kohler's Insight Theory)
5. कर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धांत (Topoligical Theory of Kurt Lewin,

प्रस्तुत पाठ्यक्रम में पावलव, कोहलर एवं थार्नडाइक का सिद्धान्त है। अतः उनके सिद्धान्तो का ही उल्लेख किया जा रहा है।

1. पावलव का अनुकूलित–अनुक्रिया का सिद्धांत (Pavlov Theary of conditioned Reoponse) -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1904 में पावलव ने किया था। उसने अनुबंधित क्रिया (Conditioned Respouse) को समझाने के लिए कुत्ते के ऊपर प्रयोग किया।

प्रारम्भ में भूखे कुत्ते के मुंह में भोजन देखकर लार आ जाना स्वाभाविक क्रिया है।

1) पावलव में प्रयोग के प्रारम्भ में कई दिनों तक खाने के साथ घण्टी बजा कर खाना दिया। (खाना + घण्टी) यह प्रयोग कई दिनों तक दोहराने पर पाया गया कि खाना एवं घण्टी में सम्बन्ध उत्पन्न हो जाता है। एवं स्वाभाविक क्रिया–लार टपकना होती है।

2) इसके बाद केवल घण्टी बजाई परन्तु खाना साथ में नहीं दिया गया। इससे यह पाया गया कि कुत्ता स्वाभाविक क्रिया (लार टपकती है) करता है। इस प्रयोग को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

	उत्तेजक		अनुक्रिया
स्थिति–1 अनुबंध से पूर्व	भोजन 1. (स्वाभाविक उत्तेजक)	अनुबंध के पूर्व →	लार टपकना (स्वाभाविक क्रिया)
	2. घण्टी बजाना (कृत्रिम उत्तेजक)	अनुबंध के बिना →	ध्वनि सुनना (स्वाभाविक क्रिया)
स्थिति–2 अनुबंध की अवधि में	3. भोजन + घण्टी बजान (स्वाभाविक) (कृत्रिमउत्तेजक) पुनरावृत्ति	→	लार टपकना (स्वाभाविक क्रिया)
स्थिति–3 अनुबन्ध के बाद	4. घण्टी बजाना (कृत्रिम उत्तेजक)	अनुबंध स्थापित →	लार टपकना (स्वाभाविक क्रिया)

इस सिद्धांत का प्रयोग पशुओं एवं मनुष्यों के व्यवहार को सुधारने व परिमार्जन में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

<u>सिद्धांत :–</u> अस्वाभाविक (कृत्रिम) उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक क्रिया का उत्पन्न होना अनुकूलित अनुक्रिया कहलाती है। उदाहरण – मिठाई की दुकान को देखकर बच्चों के मुंह से लार टपकने लगता है।

"सूझ तथा अर्न्तदृष्टि का सिद्धान्त" (Kohler's Theory of Insight) :–

सूझ द्वारा सीखने के सिद्धांत के प्रतिपादक जर्मनी के गेस्टाल्टवादी है। इसलिए इस सिद्धांत को गेस्टाल्ट सिद्धांत भी कहते हैं। इनके अनुसार व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण परिस्थिति को अपनी मानसिक शक्ति से अच्छी तरह समझ या सीख लेता है। इस प्रकार वह अपनी सूझ के कारण करता है। इस संबंध में अनेक प्रयोग किए जा चुके हैं, जिनमें सबसे प्रसिद्ध प्रयोग कोहलर का है।

कोहलर का प्रयोग –

कोहलर ने एक भूखे चिम्पाजी को एक कमरे मे बंद किया। कमरे की छत में कुछ केले इस प्रकार टाँग दिए कि वे चिम्पाजी की पहुंच के बाहर थे। कमरे में कुछ दूरी पर तीन–चार खाली बक्से भी रखे गए। चिम्पांजी ने उछल कर केले लेने का प्रयास किया पर सफल नहीं हुआ। कुछ समय पश्चात फर्श पर रखे खाली बक्सों को देखकर उनको केले के नीचे खींच कर उस पर चढ़ गया केले प्राप्त कर लिए। यह उसकी सूझ ही है जिसने उसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता दी। चिम्पान्जी के समान बालक और व्यक्ति भी सूझ द्वारा सीखते हैं।

2.2 (अ) " उद्दीपन–अनुक्रिया का सिद्धान्त (Theorhdik's Stimulus Respouse Theory) :–

किसी भी कार्य को व्यक्ति एकदम नहीं सीख पाता है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति प्रयत्न करता है और कठिनाईयां आती हैं तथा गलती व भूलें भी करता है। लगातार कोशिश करते रहने से भूलें व गलती कम होती जाती हैं। इसलिए इस सिद्धांत को प्रयत्न और भूल (Trial and error) का सिद्धात कहते हैं।

थार्नडाइक ने इस सिद्धांत का परीक्षण भूखी बिल्ली पर किया। उसने प्रयोग में भूखी बिल्ली को पिंजड़े में बंद कर दिया। पिंजड़े का दरवाजा एक खटके के दबने से खुलता था। उसके बाहर भोजन रख दिया। बिल्ली में भोजन (उद्दीपक) देखकर प्रतिक्रिया आरम्भ की। उसने अनेक प्रकार से बाहर निकलने का प्रयत्न किया। एक बार संयोग से उसका पंजा खटके पर पड़ गया। और दरवाजा खुल गया। थार्नडाइक ने इस प्रयोग को अनेक बार दोहराया। अन्त में एक समय ऐसा आ गया जब बिल्ली किसी प्रकार की भूल न करके खटके को दबा कर पिंजड़े का दरवाजा खोलने लगी। इस प्रकार उद्दीपक और प्रतिक्रिया में संबंध स्थापित हो गया।

(ब) मेज (Maze) उपकरण प्रयोग द्वारा सीखने के सिद्धान्त का सत्यापन :–

थार्नडाइक ने महत्वपूर्ण प्रयोग चूहों पर किया। इसके लिए भूल–भूलैया का प्रयोग किया। इस भूल–भूलैया में प्रवेश द्वार से भीतर जाने पर अनेक रास्ते मिलते थे। थार्नडाइक ने इस भूल–भूलैया के एक रास्ते में पनीर (भोजन) का टुकड़ा रख दिया तथा एक भूखे चूहे को भूल–भूलैया में अंदर छोड़ दिया। चूहा काफी देर तक भूल–भूलैया में अंधेरे मार्ग पर घूमता रहा परन्तु सही रास्ता

(पनीर तक पहुंचने का मार्ग) नहीं मिला। कुछ समय के बाद संयोग से उसे रास्ते में पनीर का टुकड़ा रखा हुआ मिल गया और उसे खा कर भूख शान्त की। इस प्रयोग को कई बार दोहराया गया। यह पाया गया है कि चूहे द्वारा अंधेरे मार्ग पर भटकने की समय अवधि कम होती गई तथा अन्त में ऐसी स्थिति आ गई की प्रवेश द्वारा पर छोड़े जाने पर चूहा बिना भटके हुए ही सीधे भोजन तक पहुंचने लगा। इस प्रकार उद्दीपन (भोज्य पदार्थ) और अनुक्रिया (सही मार्ग) के संबंध स्थापित हो गया।

उपरोक्त प्रयोग के आधार पर थार्नडाइक ने सीखने के प्रमुख तीन नियमों एवं सिद्धान्तों का सत्यापन किया।

2.3 सीखने का स्थानांन्तरण :–

जब व्यक्ति किसी कौशल तथा अर्जित ज्ञान का उपयोग किसी अन्य परिस्थिति में करता है तो वह स्थिति अधिगम का स्थानान्तरण कहलाता है।

अधिनयम के स्थानांन्तरण में प्रशिक्षण भी शामिल है। इसलिए स्थानांतरण में सीखन तथा प्रशिक्षण दोनों निहित है। अतः किसी सीखी हुई क्रिया या विषय का अन्य परिस्थितियों में उपयोग करने से है।" जैसे– बालक विद्यालय में जोड़, गुणा, घटाना, सीखता है और उस ज्ञान का उपयोग बाजार में चीजें खरीदते समय करता है।

इस प्रकार :–

1) अधिगम या सीखने का स्थानांतरण एक सोद्देश्य क्रिया है।
2) इस क्रिया में पहले से सीखे हुए ज्ञान तथा कौशल का अन्य परिस्थितियों में उपयोग किया जाता है।
3) इस स्थानांतरण में समायोजन में सहायता मिलती है।
4) सूझ या अर्न्तदृष्टि का विकास होता है।

स्थानांतरण के प्रकार :–

अधिगम स्थानांतरण तीन प्रकार का होता है –

1. **नकारात्मक स्थानांतरण–** जब एक परिस्थिति में सीख गया ज्ञान, नवीन ज्ञान के सीखने में बाधा उत्पन्न करता है तो उसे नकारात्मक स्थानांतरण कहते हैं।
2. **सकारात्मक स्थानांतरण–** जब एक परिस्थिति मे या एक विषय में सीखा गया ज्ञान किसी नवीन परिस्थिति या विलम को सीखने में सहायता करता है, तो उसे सकारात्मक स्थानांतरण कहते है।
3. **शून्य स्थानांतरण–** जब एक कार्य का प्रशिक्षण दूसरे कार्य को सीखने में न तो सहायता ही करता है और न ही बाधा उत्पन्न करता है तो इस प्रकार के प्रशिक्षण को शून्य स्थानांतरण कहते हैं।

2.4 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने का महत्व :–

शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया का मूल उद्देश्य है अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाना। प्रभावशाली अधिगम के लिये स्वयं अनुभव प्राप्त करना तथा भविष्य में उसका लाभ उठाना है। अनुभव के गुण, उसकी मात्रा पर सीखना निर्भर करना है। अतः इस हेतु निम्न उपाय अपनाये जाने चाहिएः–

1. सीखने की इच्छा।
2. सशक्त अभिप्रेरणा।
3. सीखने के सिद्धांत का प्रभावशाली उपयोग।
4. मूल प्रवृत्तियों में शोधन।
5. विद्यालय का उत्तम वातावरण।
6. अच्छी आदतों का निर्माण।
7. स्थायी भावों का निर्माण।
8. खण्ड एवं पूर्ण विधि द्वारा सीखना।
9. शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य।
10. रूचि तथा रूझान का विकास।
11. विषय सामग्री को स्वरूप देना।
12. सीखने की विधियां।
13. अभ्यास।
14. सफलता या परिणाम का ज्ञान।

शिक्षक तथा अभिभावकों का दायित्व सीखने को प्रभावशाली बनाने के लिये और भी बढ़ जाता है। उन्हें चाहिए कि बालकों को सीखने की प्रक्रिया के दौरान संतोषजनक अनुभव प्रदान करें।

अधिगम को प्रभावशील तथा सरल बनाने का दायित्व शिक्षक का है। शिक्षक मनोविज्ञान का ज्ञान केवल ज्ञान के लिये नहीं यह तो व्यवहार का प्रयोग है। व्यवहार को तकनीकी के द्वारा वांछित सीखने की अनुकूल परिस्थितियां पैदा करना है। शिक्षक का दायित्व है कि वह प्रभावशाली अधिगम के लिये छात्रों में सीखने की इच्छा उत्पन्न करे, उन्हें प्रेरणा दे। सीखने की मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग करे और शिक्षण सामग्री को वांछित स्वरूप प्रदान करें। छात्रों को परिणाम का ज्ञान कराता रहे और सफलता के लिये निरंतर अभ्यास करता रहे।

सारांश

व्यवहार के कारण, व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना है। सीखना जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

सीखने के नियम :–

(अ) मुख्य नियम – 1) प्रभाव का नियम 2) तत्परता का नियम 3) अभ्यास का नियम

(ब) गौण नियम – 1) बहु–अनुक्रिया का नियम 2) मानसिक स्थिति का नियम
3) आंशिक क्रिया का नियम 4) समानता का नियम
5) साहचर्य परिवर्तन का नियम

सीखने के सिद्धान्त :–

(1) अनुकूलित – अनुक्रिया का सिद्धान्त – (पावलव का सिद्धान्त)

(2) सूझ तथा अर्न्तदृष्टि का सिद्धान्त – (कोहलर का सिद्धान्त)

(3) उद्दीपन–अनुक्रिया का सिद्धान्त / प्रयत्न एवं भूल का सिद्धान्त – (थार्नडाइक का सिद्धान्त)

पाठगत – प्रश्न

प्रश्न–1 सीखना या अधिगम से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न–2 तत्परता का निमय क्या है?

प्रश्न–3 सीखने को दो परिभाषाएं लिखिए?

प्रश्न–4 सीखने के प्रमुख नियमों के नाम लिखिए?

प्रश्न–5 सीखने के प्रमुख सिद्धान्तों के नाम लिखिये?

प्रश्न–6 प्रयत्न एवं मूल सिद्धान्त के जन्मदाता कौन है? नाम लिखिए।

प्रश्न–7 सीखना के स्थानांतरण के प्रकारों के नाम बताइये?

प्रश्न–8 नकारात्मक स्थानांतरण क्या है?

प्रश्न–9 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने के 5 महत्व बताइये।

इकाई– 3

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई – 3 सीखने को प्रभावित करने वाले कारक – अवधान और रूचि।

विषयांश–

3.1 अवधान, अर्थ, विशेषताएं, प्रकार।
3.2 अवधान भंग होने के कारण और उपाय।
3.3 अवधान का विस्तार ज्ञात करने हेतु प्रयोग।
3.4 रूचि, अर्थ, विशेषताएं, प्रकार।
3.5 सीखने में रूचि बनाए रखने के उपाय।
3.6 रूचि ज्ञात करने हेतु परीक्षण।
I शैक्षिक रूचि प्रपत्र कुलश्रेष्ठ।

प्रिय छात्राध्यापक!

पिछले अध्याय में आपने सीखना अथवा अधिगम के अर्थ, नियम एवं सिद्धांत,. सीखने के प्रकार आदि के विषय में जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत अध्याय में आप सीखने को प्रभावित करने वाले कारक– अवधान एवं रूचि के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

<u>अवधान या ध्यान (Attention)</u> :–

किसी वस्तु पर चेतना केन्द्रित करना ध्यान है। मनोवैज्ञानिकों का कहना था कि ध्यान या अवधान एक मानसिक शक्ति है। लेकिन वर्तमान मनोवैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट कर दिया कि ध्यान अथवा अवधान एक मानसिक शक्ति नहीं है बल्कि एक मानसिक प्रक्रिया है।

चेतना व्यक्ति का स्वाभाविक गुण है। चेतना के कारण ही उसे विभिन्न वस्तुओं का ज्ञान होता है। यदि वह कमरे में बैठा हुआ पुस्तक पढ़ रहा है तो उसे वहां की सब वस्तुओं की कुछ न कुछ चेतना अवश्य होती है जैसे मेज, कुर्सी, अलमारी आदि पर उसकी चेतना का केन्द्र वह पुस्तक है, जिसे वह पढ़ रहा है।

चेतना के किसी वस्तु पर इस प्रकार के केन्द्रित होने को अवधान कहते है। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु पर चेतना को केन्द्रित करने की मानसिक प्रक्रिया को अवधान या ध्यान कहते हैं

अवधान की परिभाषा :—

किसी वस्तु अथवा विचार आदि पर चेतना को केन्द्रित करने की मानसिक प्रक्रिया को अवधान या ध्यान कहते हैं।

रॉस के अनुसार, "अवधान विचार की किसी वस्तु को मस्तिष्क के सामने स्पष्ट रूप से उपस्थित करने की प्रक्रिया है।"

डम्बिल के अनुसार, "अवधान दूसरी वस्तु की अपेक्षा एक वस्तु पर चेतना का केन्द्रिकरण है।"

अवधान की विशेषताएं :—

1. किसी भी वस्तु अथवा विचार आदि पर अवधान होने के लिये मानसिक सक्रियता आवश्यक है।
2. किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक तत्परता आवश्यक है।
3. अवधान केन्द्रित करने के लिए अनेक वस्तुओं की अपेक्षा एक वस्तु पर ध्यान केंद्रित कर पाता है अतः अवधान का विस्तार संकुचित है।
4. अवधान बहुत चंचल होता है। व्यक्ति का अवधान एक वस्तु पर केन्द्रित होता है जैसे ही दूसरी वस्तु सामने आती है वैसे ही अवधान दूसरी वस्तु पर चला जाता है।
5. भाटिया के अनुसार, "अवधान ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और भावात्मक है।
6. अवधान प्रायः अस्थिर होता है एवं वातावरण के अन्य कारकों की और भटकने का प्रयास करता है।
7. अवधान में प्रयोजनता रहती है अर्थात जब व्यक्ति किसी वस्तु या विचार पर अवधान केन्द्रित करता है, उसका कोई न कोई उद्देश्य या प्रयोजन रहता है।
8. अवधान एक चयनात्मक प्रक्रिया है। व्यक्ति अपने अभिरूचि और मनोवृत्ति के अनुसार किसी वस्तु पर अवधान केन्द्रित करता है।
9. अवधान में सजीवता होती है। व्यक्ति जिस वस्तु पर अवधान केन्द्रित करता है वह वस्तु व्यक्ति की चेतना में स्पष्ट हो जाती है तथा जिस वस्तु पर अवधान केंद्रित नहीं होता उस वस्तु का चित्र व्यक्ति की चेतना में अस्पष्ट रहता है। अतः चेतना का कारण अवधान होता है।

10. अवधान केन्द्रित करने में इन्द्रियां, मुद्रा, मांसपेशियां आदि वातावरण के प्रति समायोजन कर लेती है। अतः अवधान में समायोजनता रहती है।

अवधान के प्रकार :–

जे.एस. रॉस ने अवधान का वर्गीकरण निम्नानुसार किया है:–

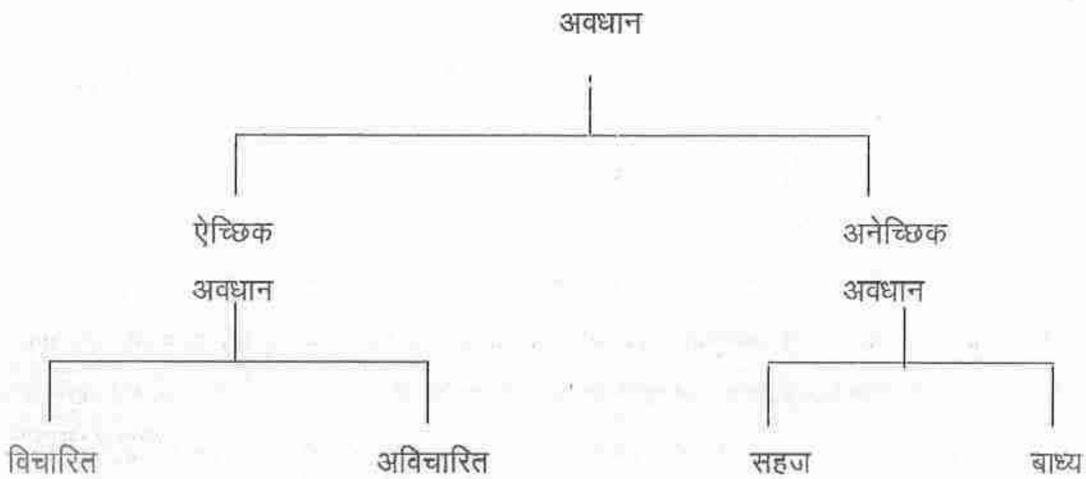

1. **ऐच्छिक अवधान :–** अर्जित अभिरूचि या रूचि पर आधारित होता है। यह दो प्रकार का होता है:–

   अ) विचारित:– जब हम अच्छी तरह विचार कर किसी विचार या वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, तो वह विचारित ध्यान कहलाता है।

   ब) अविचारित:– इस प्रकार के ध्यान में व्यक्ति को कोई विचार नहीं करना होता है।

2. **अनेच्छिक अवधान:–** यह ध्यान जन्मजात अभिरूचियों पर निर्भर होता है। व्यक्ति का ध्यान किसी वस्तु पर केन्द्रित हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है:–

   अ) सहज ध्यान :– यह मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होता है।

   ब) बाध्य ध्यान :– इस प्रकार के ध्यान में बाध्यता प्रमुख होती है।

<u>3. अवधान भंग होने के कारण</u> :–

अवधान भंग होने के निम्नलिखित कारण हो सकते है –

1. <u>थकान –</u> थकान के कारण व्यक्ति किसी वस्तु पर अवधान केंद्रित नही कर पाता है।
2. <u>रूचि –</u> जिस वस्तु में व्यक्ति की रूचि नहीं होती है अवधान केंद्रित नहीं हो पाता है

3. <u>शक्तिशाली प्रेरक –</u> के प्रभाव से अवधान केन्द्रित करने में बाधा आती है। जैसे परीक्षा के समय जोर से लाउडस्पीकर का चलना पढ़ाई में अवधान केंद्रित नहीं हो पाता है। बालक का मन दूसरी ओर चला जाता है।
4. <u>अनुचित वातावरण</u> – जैसे तेज गर्मी या सर्दी, वर्षा या ठण्ड भी बालकों को अवधान केन्द्रित करने में बाधा डालते हैं।
5. <u>व्यक्ति का स्वास्थ्य</u> ठीक न होने पर अवधान केंद्रित करने में विध्न डालता है।
6. <u>शिक्षण विधियाँ</u> भी बालकों के अवधान केन्द्रित होने में बाधा डालते हैं।

जब व्यक्ति किसी विशेष वस्तु, व्यक्ति विचार या क्रिया को देखने या जानने के लिए उस पर अपना ध्यान केंद्रित कर रहे होते हैं तो हमारे बाह्य तथा आंतरिक वातावरण में कोई न कोई घटना या बात ऐसी घटित हो जाती है कि हमारा ध्यान उस ओर चला जाता है जिसके फलस्वरूप हमारे पहले से दिए जा रहे ध्यान की प्रक्रिया में रूकावट या बाधा आ जाती है। इस प्रक्रिया को अवधान भंग होने या व्यवधान कहते हैं। व्यवधान या अवधान भंग होने के अनेक कारण हैं :–

(1) बाह्य उद्दीपन – गर्मी,–सर्दी, तीव्र प्रकाश, शोर, संगीत, अधिकारियों की मानिसक स्थिति आदि शामिल होते हैं।

(2) आंतरिक उद्दीपन – सिर दर्द, पेट दर्द, बीमारी, घटना, काम करने का गलत व्यवहार आदि शामिल होते हैं।

3.2 <u>अवधान भंग होने के कारण और उपाय :–</u>

1. दृढ़ इच्छा शक्ति एवं संकल्प ।
2. ध्यान भंग की उपेक्षा।
3. ध्यान विचलित न होने देने क प्रयत्नों में वृद्धि करना।
4. टनुकूलन तथा समायोजन तकनीक का उपयोग।
5. पुनरावृति
6. नवीनता इत्यादि।

3.3 <u>अवधान का विस्तार ज्ञात करने हेतु प्रयोग :–</u>

अवधान का विस्तार ज्ञात करने में दो दशा मुख्य रूप से सहायक होती है –

(अ) बाह्य या वस्तुगत् दशा में (External or objective conditions)

(ब) आंतरिक या आत्मगत् दशा में (Internal or Subjective conditions)

(अ) बाह्य या वस्तुगत् दशायें

(Erternal or Objective Conditions)

बह्य या वस्तुगत दशाओं में निम्नलिखित दशायें सहायता देती है :

1) उद्दीपक की प्रकृति (Nature of the Stimulus) – जैसे छोटे बच्चों का शब्दों की जगह चित्रों की ओर आकर्षित होना, आकर्षित रंग, वस्तु आदि।

2) उद्दीपक के उद्देश्य (Aims of the Stimulus) – मेज पर रखा रिवलोना के स्थान पर चलते हुए खिलोंने बच्चों को आकर्षित करते हैं।

3) अवधि (Duration) – जो वस्तु या पाठ व्यक्ति के सामने अधिक समय तक रहती है या बार–बार आती है उस ओर अवधान केंद्रित होता है।

4) आकार ;Size) – जो वस्तु बड़े आकार की होती है वे व्यक्ति का अवधान केंद्रित करता है।

5) नवीनता (Novelty) – जो वस्तु विचार, व्यक्ति के लिए नवीन होते हैं। व्यक्ति का ध्यान आर्कषित करते है। जैसे– नए खिलौने, किताबें, कपडे आदि।

6) पुनरावृत्ति (Repetition) – जब वस्तु, विचार, उत्तेजना हमारे समक्ष बार–बार आती है। उन पर हमारा ध्यान अपने आप चला जाता है। जैस– रेडियो, टी.वी. में विज्ञापन, कक्षा में प्रश्नों की पुनरावृत्ति।

7) रहस्यात्मकता (Secracy) – किसी को देखकर बात करना व्यक्ति का ध्यान उस ओर आकर्षित करता है।

8) तीव्रता (Intensity) – दुर्बल उत्तेजनाओं की तुलना तीव्र उत्तेजनायें व्यक्ति का ध्यान में आकर्षित करती है। जैसे हल्के रंग की अपेक्षा चटकीले भड़कीले रंग, हल्की आवाज की जगह तीव्र आवाज व्यक्ति को आर्कषित करती है।

9) विषमता (Contrast) – विषमता भी व्यक्ति के अवधान को प्रभावित करती है। मोटे व्यक्ति के साथ पतले व्यक्ति का होना।

10) परिवर्तन (Change) – किसी स्थिति का अचानक परिवर्तन भी व्यक्ति के ध्यान को आर्कषित करता है। जैसे चलते पंखे, जलती ट्यूब–लाइट रेडियो या टी.वी. का अचानक बंद हो जाना उस ओर ध्यान आकर्षित करता है।

(ब) आंतरिक या आत्मगत् दशायें
(Internal or Subjective Conditions)

1. <u>आवश्यकता (Need)–</u> वह वस्तुऐ जो व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, व्यक्ति का ध्यान शीघ्र ही आर्कषित कर लेती हैं।

2. <u>रूचि (Intrest)</u> – जिन वस्तुओं में व्यक्ति की रूचि होती है उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित होता है।

3. <u>उद्देश्य (Objetives)</u> – व्यक्ति अपने चुने गए या स्थापित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति की क्रियाऐं उस दिशा में केन्द्रित रहती है।

4. <u>आदत (Habbit)</u> – व्यक्ति को जिन वस्तुओं या कार्यो की आदत होती है उन पर उसका अवधान केंद्रित होता है। जैसे–सुबह की चाय, अखबार, शाम को खेलना आदि।

5. <u>प्रशिक्षण (Training)</u> – प्रशिक्षण प्राप्त करते समय प्रशिक्षण द्वारा भी व्यक्ति का ध्यान केंद्रित होने लगता है।

6. <u>मानसिक दशा (Mental Condition)</u> – व्यक्ति कोई भी कार्य मानसिक दशा के आधार पर करता है। व्यक्ति का मन कभी प्रसन्न होता है तो कभी अप्रसन्न। अब इन स्थितियों में अवधान के केन्द्रिकरण भी प्रभावित होता है।

7. <u>पूर्व–ज्ञान (Previous Knowledge)</u> – थार्नडाइक एवं हरबर्ट आदि ने स्पष्ट कर दिया है कि बालक की शिक्षा पर उसके पूर्व–ज्ञान का प्रभाव पडता है। व्यक्ति का पूर्व–ज्ञान या अनुभव सीखने में ध्यान केंद्रित करता है।

8. <u>जिज्ञासा (Curiosity)</u> – जब व्यक्ति किसी कार्य को सीखने की जिज्ञासा रखता है उस कार्य पर उसका अवधान केंद्रित होता है।

9. <u>मनोवृत्ति (Attitude)</u> – व्यक्ति की मनोवृत्ति भी अवधान केन्द्रिकरण पर प्रभाव डालती है। जिस प्रकार की मनोवृत्ति होती है व्यक्ति का ध्यान उसी के अनुसार आर्कषित होता है। जैसे–मित्रों में सद्गुणों एवं शत्रुओं में बुराईयां ढूंढना आदि।

10. <u>अर्थ (Meaning)</u> – जिन विषयों, वस्तु का अर्थ व्यक्ति समझ लेता है वह व्यक्ति का अवधान केंद्रित कर लेती है।

3.4 रूचि अर्थ विशेषताएं एवं प्रकार :

मेक्डूगल के अनुसार,– " रूचि गुप्त अवधान है, अवधान सक्रिय रूचि है।" इसका अर्थ है कि रूचि अवधान मे तथा अवधान रूचि में प्रदर्शित होती है।

रॉस के अनुसार,– अवधान एवं रूचि एक ही सिक्के के दो पहलू है। अर्थात रूचि और अवधान एक दूसरे पर आधारित रहते हैं।

रूचि किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार के प्रति सम्बन्ध जोड़ने वाली मानसिक क्रिया है। परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि रूचि एक मानसिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि एक मानसिक व्यवस्था है। यह व्यवस्था अनुभव द्वारा बनती है। जो व्यक्ति में रूचि या अरूचि की अनुमति करती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि आवश्यकता, प्रतिष्ठा, मूल्य तथा समझ आदि कारक रूचियों का निर्धारण करते हैं।

बी. एन. झा **(B. N. Jha)** के अनुसार– रूचि वह स्थिर मानसिक विधि है, जो ध्यान क्रिया को सतत् बनाये रखती है।

रूचि की विशेषताएं (Charecteritics of Interest) :–

रूचि में निम्नलिखित विशेषताएं पायी जाती है–

1. रूचि जन्मजात होती है।
2. रूचि मानसिक स्थिति को प्रकट करती है।
3. रूचि द्वारा व्यक्ति में सक्रियता निर्मित करती है।
4. रूचि सीखने में सहायक होती है।
5. रूचि व्यक्ति को क्रियाशील बनाए रखने में सहायक होती है।
6. रूचि व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार बदलती रहती है। अर्थात रूचियां परिवर्तनशील होती हे।
7. रूचियाँ व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर से प्रभावित होती हैं।
8. रूचियाँ लिंग व आयु के अनुसार भिन्न–भिन्न होती हैं।
9. रूचियों पर व्यक्ति और वातावरण के अनेक कारक प्रभाव डालते हैं।
10. व्यक्ति की अभिप्रेरणा, योग्यता, पुरस्कार तथा संतुष्टि आदि के आधार पर रूचियों का निर्धारण होता है।

रूचियों के प्रकार (**Types of Interest**) :-

1. जन्मजात रूचि (**Inborn Interest**) :- जन्मजात रूचियाँ व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों (जो जन्म से व्यक्ति में आती है) पर निर्भर करती है। जैसे बच्चा खेलने में।

2. अर्जित रूचि (**Derived Interest**) :- वे रूचियाँ जो व्यक्ति के अभ्यास का परिणाम, या वातावरण, अनुभव आदि से विकसित होती है अर्जित रूचि कहते हैं। जैसे- व्यक्ति का कला के प्रति रूचि, विज्ञान, खेल, राजनीति एवं सामाजिक कार्य में रूचि। इस प्रकार की रूचियाँ वंशानुक्रम के प्रभावों के अतिरिक्त विकसित होती है।

3.5 सीखने में रूचि बनाए रखने के उपाय (**Measures for Interest Continuance in Learnig**):-

शिक्षा में बालक की रूचि बनाये रखने हेतु निम्नलिखित विधियों का उपयोग करना चाहिए-

(1) छात्र का अध्ययन (**Study of the Student**) - छात्र की मनोदशा का अध्ययन करके उनकी कक्षा में रूचि बढ़ाई जा सकती है।

(2) उद्देश्य की स्पष्टता (**Clearity of Aim**) - छात्र को यह बताया जाना चाहिए कि विषय या पाठ क्यों पढ़ाया जा रहा है। उसका भविष्य में क्या उपयोग है अर्थात् उद्देश्य स्पष्ट बताया जाए तो छात्र का मन स्वयं ही विषय या पात को सीखने में लगेगा।

(3) रूचि का मापन (**Measurement of Interest**) - छात्रों की रूचि का ध्यान रख कर पाठ या विषय को पढ़ाया जाता है तो वह शीघ्र ही सीख लेता है। शिक्षक का कार्य होता है कि बालक में रूचि को जागृत कर शिक्षा देवें तथा रूचि को प्रभावित करने वाले कारकों पर भी ध्यान रखना चाहिए।

(4) सहायक सामग्री का प्रयोग (**Use of material Aid**) -- छात्रों में पाठ या विषय की ओर ध्यान आर्कषित करने के लिए शिक्षक को अपने पढ़ाने के दौरान सहायक सामग्री का उपयोग करना चाहिए।

(5) उपयुक्त विधि (**Appropriate Mathod**) - शिक्षक को छात्रों को ज्ञान देने के लिए उपयुक्त शिक्षण विधियों, युक्तियों, उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिये, जिससे छात्र पाठ को शिक्षण प्रक्रिया के दौरान ही आत्मसात कर लेते हैं।

(6) विषयवस्तु की उपयोगिता (**Utility of Subject Matter**) - रूसो ने क्रिया के द्वारा सीखना' या 'अनुभव से सीखना' पर जोर दिया है। अत' शिक्षक इन विधियों को उपयोग पर छात्रों को विषयवस्तु का व्यवहारिक बनाकर ज्ञान देना चाहिए।

(7) <u>अध्यापक का प्रभाव</u> – छात्रों में सीखने के प्रति रूचि जागृत करने में शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव सबसे अधिक कार्य करता है। छात्र जिन शिक्षकों को पसन्द करते हैं उनकी बातों, क्रियाओं, आदतों, व्यवहारों को बहुत ध्यान से देखकर अपने को उसी अनुसार ढालने की कोशिश करते हैं। अतः जहां ध्यान होता है रूचि स्वतः जागृत हो जाती है।

3.6 रूचि ज्ञात करने हेतु परीक्षण (Various Test of Knowing Interest) :–

<u>एस. पी. कुलश्रेष्ठ</u> : का शैक्षिक रूचि–पत्रक

प्रस्तुत पत्रक में सात शैक्षिक क्षेत्रों– कृषि, कला, वाणिज्य, विज्ञान एवं तकनीकी, गृह–विज्ञान तथा ह्यूमेनिटिज्य से संबंधित 98 शैक्षिक विषयों का अध्ययन सम्भव है। यह पत्रक स्वयं प्रशासित किया जाता है। यह समूह तथा व्यक्तिगत रूप से प्रशासित किया जा सकता है। समय–सीमा 5 से 7 मिनट रखी गई है। इस पत्रक का उद्देश्य माध्यमिक स्तर और महाविद्यालीय स्तर पर पढ़ने वाले छात्रों को शैक्षिक परामर्श एवं निर्देशन देना है।

<u>सारांश</u>

अवधान का अर्थ व परिभाषा :– अवधान मानसिक शक्ति न होकर मानसिक प्रक्रिया है।

अवधान की विशेषताऐं :– 1) मानसिक सक्रियता आवश्यक है।
2) शारीरिक व मानसिक तत्परता आवश्यक है।
3) अवधान का विस्तार संकुचिलत है।
4) अवधान चंचल है।
5) अवधान अस्थिर होता है।
6) अवधान में प्रयोजनता, चयनात्मक प्रक्रिया है।
7) अवधान में सजीवता होती है।
8) अवधान में समायोजनता होती है।

अवधान के प्रकार– जे. एस. रॉस के अनुसार अवधान के प्रकार –

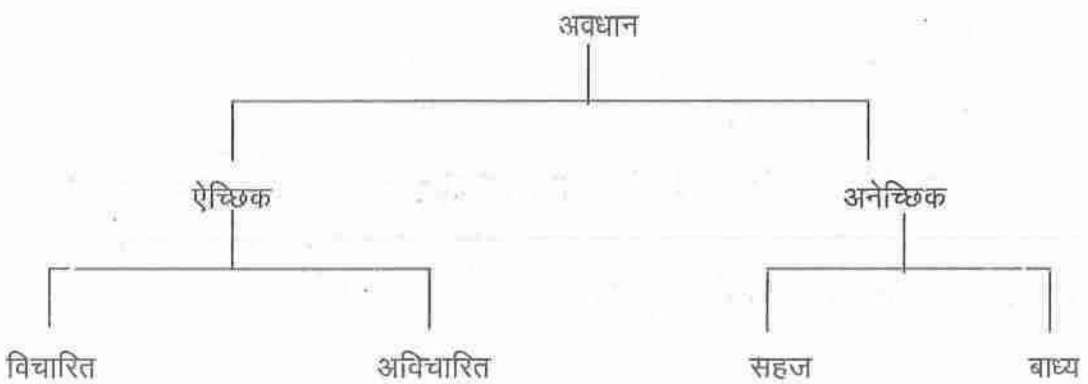

अवधान भंग होने के कारण

अवधान भंग होने के उपाय व उपचार

अवधान विस्तार ज्ञान करने हेतु उपयोग – मुख्य दो दशाएें :

1. बाह्य वस्तुगत् दशायें
2. आंतरिक या आत्मगत् दशायें

रूचि अर्थ एवं परिभाषा :

मेक्डूगल के अनुसार – "रूचि गुप्त अवधान है, अवधान सक्रिय रूचि है।"

रॉस के अनुसार – अवधान एवं रूचि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।"

रूचि के प्रकार –

1) जन्मजात रूचि
2) अर्जित रूचि

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न–1 रूचि की एक परिभाषा बताइयें।

प्रश्न–2 रूचि के प्रकार बताइयें।

प्रश्न–3 रूचि की कोई दो विशेषताएं लिखिये?

प्रश्न–4 किसी वस्तु पर..................................केंद्रित करना ध्यान है।

प्रश्न–5 अवधान के मुख्य प्रकारों के नाम बताइए।

प्रश्न–6 अनुचित वातावरण अवधान में....................................डालता है।

— — — —

इकाई– 4

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई–4 : अधिगम में अभिप्रेरणा।

विषयांश–

4.1 अर्थ एवं प्रकार।
4.2 अभिप्रेरणा के सिद्धांत।
4.3 अभिप्रेरणा का सीखने में महत्व।
4.4 अभिप्रेरणा की विधियां।

प्रिय छात्राध्यापक!

पिछले अध्याय में आपने अवधान और रूचि के विषय में जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत अध्याय में अधिगम में अभिप्रेरणा का अर्थ, प्रकार एवं सिद्धांत के विषय में जानकारी दी गई है। अभिप्रेरणा का सीखने में महत्व एवं विधियों के विषय में जानकारी दी जा रही है।

4.1 अर्थ एवं प्रकार :–

"धोड़े को पानी तक ले जा सकते है परंतु उसे पानी पीने के लिये विवश नहीं कर सकते।" अतः अभिप्रेरणा की आवश्यकता है जिससे अधिगमार्थी सीखने में रूचि लेने लगे।

प्रेरणा के शाब्दिक और मनोवैज्ञानिक अर्थों में अन्तर है। प्रेरणा के शाब्दिक अर्थ में हमें किसी कार्य को करने का बोध होता है। इस अर्थ में हम किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कह सकते है। क्योंकि उत्तेजना के अभाव में किसी प्रकार की पतिक्रिया संभव नहीं है।

गुड के अनुसार– "प्रेरणा कार्य को प्रारंभ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है।"

शिक्षा एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है तथा प्रत्यंक क्रिया के पीछे एक वल कार्य करता है जिसे हम प्रेरक बल कहते है। इस संदर्भ में प्रेरेणा एक बल है जो प्राणी को कोई निश्चित व्यवहार या निश्चित दिशा में चलने के लिये बाध्य करती है।

प्रेरणा के प्रकार :–

प्रेरणा दो प्रकार की होती है:–

1. **आन्तरिक प्रेरणा (Intrinsic)** :– इस प्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से करता है। इस कार्य को करने से उसे सुख और संतोष प्राप्त होता है।
2. **बाह्य प्रेरणा (Extrinsic)** :– इस प्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से न करके, किसी दूसरे की इच्छा या बाह्य प्रभाव के कारण करता है। इस कार्य को करने से उसे किसी वांछनीय या निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

4.2 अभिप्रेरणा के सिद्धांत :–

1. **मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत** :– मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत अहं तथा व्यक्ति की आत्मधारणा पर बल देते है। अहं व्यक्ति की उत्तेजनाओं अर्थात अचेतन के आरंभिक भाग का नियमन करता है। इस भाग में अनियमित सुख भोग की आकांक्षा प्रवृत्तियां विद्यमान रहती है।
2. **ज्ञानवादी सिद्धांत** :– इस अभिप्रेरणा के ज्ञानवादी सिद्धांत घटनाओं के ज्ञान तथा पूर्वज्ञान पर केन्द्रित है। इसके अनुसार हम समझ विचार तथा निर्णय द्वारा उन सापेक्षित मूल्यों को चुन लेते है जो हमारे व्यवहार को अनुशासित करते हे। हम उन विश्वासों, विचारों तथा आशाओं का निर्माण करते है जो हमारे लक्ष्य अनुगामी व्यवहार का नियमन करते है।
3. **व्यवहारवादी सिद्धांत** :– अभिप्रेरणा की धारणाएं मुख्य रूप से नव दृढ़ता के सिद्धांत पर आधारित है। व्यवहार को लक्ष्य अभिमुख माना जाता है और अभिप्रेरणा को शक्ति प्रदान करने वाले तत्वों तथा उसे निर्देशित करने वाले तत्वों का अध्ययन करने के लिये विभिन्न सैद्धांतिक धारणाओं का प्रयोग किया जाता है।
4. **शारीरिक सिद्धांत** :– लार्ड रूदर फोर्ड के अनुसार "सभी व्याख्याएं शारीरिक दृष्टि से होनी चाहिए।" व्यक्तित्व एवं शरीर के परस्पर संबंध का अध्ययन किया है। वह भी अप्रत्यक्ष रूप से अभिप्रेरणा के शारीरिक सिद्धांत के पक्ष में है क्योंकि उन्हांने इस बात को निश्चित करने का प्रयास किया कि विभिन्न प्रकार की शरीर रचना के अनुसार आवश्यकताए, इच्छाएं, रूचियां तथा प्रवृत्तियां भी विभिन्न होती है।
5. **क्षेत्रीय सिद्धांत** :– यह सिद्धान्त कर्ट लेविन (Kurt Lovin) की देन है। उन्होंने स्थान विज्ञान (Topology) से बड़ी सहायता ली है। उनका कथन है कि किसी परिस्थिति विशेष में व्यक्ति का

व्यवहार उन तत्वों द्वारा परिचालित होता है, जो आस–पास के वातावरण के बीच में कार्यरत रहते हैं। यदि वातावरण में उसे उत्साह मिलता है, तो वह आशावान बना रहेगा, परन्तु भयपूर्ण वातावरण में निराशा ही हाथ लगेगी।

अभिप्रेरणा के उपर्युक्त सभी सिद्धांत एक दूसरे के पूरक है, एक दूसरे के विरोधी नहीं।

4.3 अभिप्रेरणा का सीखने में महत्व :–

1. **अभिप्रेरणा व्यवहार का पथ प्रदर्शन करती है:–** यह व्यक्ति के व्यवहार को इस प्रकार नया मोड़ देती है कि उसे संतुष्टि की भावना अनुभव होने लगती है।
2. **अभिप्रेरणा व्यवहार में शक्ति का संचार करती है:–** अभिप्रेरणा विद्यार्थी को सीखने में शक्ति प्रदान करतीहै। दण्ड तथा पुरस्कार आदि प्रेरणाएं सीखने के अमल में बहुत लाभदायक सिद्ध होती है।
3. **अभिप्रेरणा व्यवहार का चुनाव करती है:–** यह विद्यार्थी को कुछ परिस्थितियों में प्रतिक्रिया करने तथा दूसरों को आंखों से ओझल करने के लिये कहती है।
4. **ध्यान केन्द्रित करने में सहायक :–** अभिप्रेरणा विद्यार्थियों को प्रेरित करके उन्हें अपने ध्यान को पाठ्यविषय में केन्द्रित करने में सहायता दे सकता है।
5. **रूचि विकसित करने में सहायक :–** अभिप्रेरणा विद्यार्थियों में रूचि उत्पन्न करने की कला है।
6. **अधिक ज्ञान का अर्जन :–** अध्यापक विद्यार्थियों में उत्तम शिक्षण विधियों का प्रयोग करके अधिक ज्ञान को तीव्र गति से अर्जित करने के लिये अभिप्रेरणा प्रदान कर सकता है।
7. **चरित्र निर्माण में सहायता :–** अध्यापक विद्यार्थियों को उत्तम गुणों और आदर्शों को प्राप्त करने के लिये प्रेरित कर सकता है।
8. **सामाजिक गुणों का विकास :–** अध्यापक विद्यार्थियों को सामुदायिक कार्यों में भाग लेने के लिये प्रेरित करके उनमें सामुदायिक भावना और सामाजिक गुणों का विकास कर सकता है।
9. **अनुशासन की भावना का विकास :–** अध्यापक विद्यार्थियों में अनुशासन की भावना का विकास करके अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान कर सकता है।
10. **व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार प्रगति :–** अध्यापक उचित प्रेरणाओं का प्रयोग करके विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार कार्य करने में सहायता कर सकता है।

4.4 अभिप्रेरणा की विधियां :–

फ्रेन्डसन के अनुसार "प्रभावी अधिगम प्रभावशाली प्रेरणा पर निर्भर करता है।" जितनी अच्छी प्रेरणा होगी उतना ही बेहतर सीखना। अतः शिक्षक को कक्षा में छात्रों को प्रेरित करने में निम्नलिखित विधियां अपनानी चाहिए:–

1. पुरस्कार एवं दण्ड।
2. प्रशंसा एवं निन्दा।
3. सफलता व असफलता।
4. प्रतियोगिता एवं सहयोग।
5. प्रगति का ज्ञान।
6. आकांक्षा का स्तर।
7. नवीनता।
8. रूचि।
9. आवश्यकताओं का ज्ञान।
10. कक्षा का वातावरण।

1. **पुरस्कार एवं दण्ड :–** छात्रों को प्रेरित करने में यह एक प्रमुख विधि है। इस प्रविधि के अनुसार अच्छे कार्यों के लिये छात्रों को पुरस्कार दिया जाना चाहिए तथा गलत कार्यों के लिये दण्ड दिया जाना चाहिए।
2. **प्रशंसा एवं निन्दा :–** इस प्रविधि में अच्छे कार्यों के लिये छात्र की प्रशंसा करनी चाहिए तथा बुरे कार्यों के लिये उसकी निन्दा करनी चाहिए।

3. **सफलता एवं असफलता :–** जीवन एक संघर्ष है। हर प्राणी को सफलता व असफलता जीवन में दोनों प्राप्त होती है। सफलता मिलने पर व्यक्ति आगे बढ़ता है लेकिन बार–बार असफल होने पर उसका मनोबल टूट जाता है।

4. **प्रतियोगिता एवं सहयोग :–** आज का युग प्रतियोगिता का युग है। प्रतियोगिता एक अच्छा प्रेरक है। इस भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति अपने कार्य को मेहनत से करता है। इसी प्रकार आज के युग में बिना सहयोग के मनुष्य कार्य नहीं चला सकता। मिलजुल कर कार्य करने से कार्य कम परिश्रम में हो जाता है।

5. **प्रगति का ज्ञान** :– प्रगति का ज्ञान होने से व्यक्ति को आगे बढ़ने में निरंतर प्रोत्साहन मिलता रहता है।

6. **आकांक्षा का स्तर** :– यह प्रविधि सफलता व असफलता पर आधारित है। बार–बार सफलता मिलने पर व्यक्ति का आकांक्षा स्तर ऊंचा होता चला जाता है।

7. **नवीनता** :– शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह छात्र अधिगम प्रक्रिया के लिये छात्र की रूचि कम न होने दे। इसके लिये नवीन शिक्षण विधियों एवं सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिए।

8. **रूचि** :– रूचि से बढ़कर कुछ नहीं है तथा इसके अभाव में शिक्षक के सभी प्रयास विफल हो जाते है।

   किसी ने कहा है –

   "Interest is the greatest word in the dictionary of education."

9. **आवश्यकताओं का ज्ञान** :– प्रत्येक छात्र की अपनी कुछ आवश्यकताएं होती है, मूल्य होते है, आदर्श होते है, दृष्टिकोण एवं अभिक्षमताएं होती हैं। इन्हीं के योग से छात्र का व्यक्तित्व बनता है। बालक की मुख्य आवश्यकताएं उसके सीखने में उद्दीपक का कार्य करती है।

10. **कक्षा का वातावरण** :– कक्षा का वातावरण भी स्वयं में एक अच्छा अभिप्रेरक है। कक्षा वातावरण छात्र के पूरे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। शिक्षक के अच्छे व्यवहार से कक्षा का वातावरण प्रेरणादायक व आनन्दायक महसूस होता है।

इकाई का सारांश :–

जीवन के हर क्षेत्र में तथा कार्यों के चरणों में अभिप्रेरणा का प्रमुख हाथ होता है। इसलिए हमारे जीवन मं सफलता तथ प्राप्ति अभिप्रेरणा पर ही निर्भर करती है। प्रेरणा विद्यार्थियों में पढ़ाई तथा अन्य कार्यों के लिये रूचि पैदा करने तथा उनमें जोश भरने की कला है।

प्रेरणा के प्रकारः–

1. सकारात्मक।
2. नकारात्नक।

प्रेरणा के सिद्धांतः–

1. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत।
2. ज्ञानवादी सिद्धांत।
3. व्यवहारवादी सिद्धांत।
4. शारीरिक सिद्धांत।

अभिप्रेरणा का सीखने में महत्व :–

1. अभिप्रेरणा व्यवहार का पथ प्रदर्शन करती है।
2. अभिप्रेरणा व्यवहार में शक्ति का संचार करती है।
3. अभिप्रेरणा व्यवहार का चुनाव करती है।
4. ध्यान केन्द्रित करने में सहायक।
5. रूचि विकसित करने में सहायक।
6. अधिक ज्ञान का अर्जन।
7. चरित्र निर्माण में सहायता।
8. सामाजिक गुणों का विकास।

अभिप्रेरणा की विधियां :–

1. पुरस्कार एवं दण्ड।
2. प्रशंसा एवं निन्दा।
3. सफलता व असफलता।
4. प्रतियोगिता एवं सहयोग।
5. प्रगति का ज्ञान।
6. आकांक्षा का स्तर।
7. नवीनता।
8. रूचि।
9. आवश्यकताओं का ज्ञान।
10. कक्षा का वातावरण।

पाठ्गत प्रश्न

प्र. 1 अभिप्रेरणा के प्रकार बताइये?

प्र. 2 अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतों के नाम लिखियें?

प्र. 3 पुरस्कार एवं दण्ड छात्रों को प्रेरित करने में किस प्रकार सहायता करता हैं?

प्र. 4 कक्षा का वातावरण किस प्रकार छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित करता हैं?

इकाई– 5

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई – 5 स्मृति व विस्मृति

विषयांश –

5.1 स्मृति का अर्थ एवं उसके अवयव।
5.2 अच्छी स्मृति के लक्षण एवं उन्नति के उपाय।
5.3 विस्मृति का कारण, महत्व।
5.4 विस्मृति कम करने के उपाय।

प्रिय छात्राध्यापक!

पिछली इकाई में आपने अधिगम में अभिप्रेरणा पढ़ा। प्रस्तुत इकाई में स्मृति एवं विस्मृति की परिभाषा, लक्षण एवं महत्व के विषय में जानकारी दी गई हैं। इकाई के अन्त में पुनरावलोकन बिन्दु तथा पाठगत प्रश्न भी दिये गये हैं। हम आशा करते है कि दिए गए निर्देशानुसार अध्ययन करके आप संपूर्ण पाठ को भली भांति समझ सकेंगे।

5.1 स्मृति का अर्थ व परिभाषा :–

स्मृति एक मानसिक क्रिया है। स्मृति का आधार अर्जित अनुभव है, इनका पुनरूत्पादन परिस्थिति के अनुसार होता है। हमारे बहुत से मानसिक संस्कार स्मृति के माध्यम से ही जाग्रत होते है।

स्टॅट एवं ओकडन के अनुसार स्मृति एक जटिल शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया है जिसे हम थोड़े शब्दों में इस प्रकार स्पष्ट कर सकते है कि हम किसी वस्तु को छूते, देखते, सुनते या सूघते है तब हमारे ज्ञात वाहक तन्तु (Sensory Nerves) उस अनुभव को हमारे मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र (Sensory Centre) में पहुंचा देते है। ज्ञान केन्द्र में उस अनुभव की प्रतिमा बन जाती है जिसे 'छाप' (Engram)

कहते है। यह छाप वास्तव में उस अनुभव का स्मृति चिन्ह (Memory Trace) होती है जिसके कारण मानसिक रचना के रूप में कुछ परिवर्तित हो जाता है। यह अनुभव कुछ समय तक हमारे चेतन मन में रहने के बाद अचेतन मन में चला जाता है और हम उसको भूल जाते है। उस अनुभव के अचेतन मन में संचित रखने और चेतन मन में लाने की प्रक्रिया को स्मृति कहते है। दूसरे शब्दों में पूर्व अनुभवों को अचेतन मन में संचित रखने और आवश्यकता पड़ने पर चेतन मन में लाने की शक्ति को स्मृति कहते है।

1. वुडवर्थ– "जो बात पहले सीखी जा चुकी है, उसे स्मरण रखना ही स्मृति है।"
2. स्टाउट– "स्मृति एक आदर्श पुनरावृत्ति है।"
3. मैक्डूगल– "स्मृति से तात्पर्य अतीत की घटनाओं की कल्पना करना और इस तथ्य को पहचान लेना भी ये अतीत के अनुभव है।"

स्मृति के अवयव (अंग) :–

स्मृति एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। वुडवर्थ के अनुसार स्मृति या स्मरण की पूर्ण क्रिया के निम्नांकित अंग, पद या खंड होत है:–

1. सीखना – स्मृति का पहला अंग है सीखना हम जिस बात को याद रखना चाहते है उसको हमे सबसे पहले सीखना पड़ता है। गिलफोर्ड का कथन है– "किसी बात को भली भांति याद रखने के लिये अच्छी तरह सीख लेना आधी से अधिक लड़ाई जीत लेना है।"
2. धारण – स्मृति का दूसरा अंग है धारण। इसका अर्थ है सीखी हुई बात को मस्तिष्क में संचित रखना। हम जो बात सीखते है वह कुछ समय के बाद हमारे अचेतन मन में चली जाती है। वहां वह निष्क्रीय दशा में रहती है। इस दशा में वह कितने समय तक संचित रह सकती है, यह व्यक्ति की धारण शक्ति पर विशेष निर्भर रहता है। रायबर्न का मत है– "अधिकांश व्यक्तियों की धारण शक्ति में कोई परिवर्तन नही होता है।" परिवर्तन न होने के बावजूद भी कुछ बाते ऐसी है जो हमें अपने अनुभव को अधिक समय तक स्मरण रखने में सहायता देती है। यथा –
   - (i) स्वस्थ व्यक्ति सीखी हुई बात को अधिक समय तक स्मरण रखता है।
   - (ii) अधिक अच्छी विधि से सीखी हुई बातें अधिक समय तक स्मरण रहती है।
   - (iii) सीखी हुई बात को जितना अधिक दोहराया जाता है उतने ही अधिक समय तक वह स्मरण रहती है।
   - (iv) रूचि और ध्यान से सीखी जाने वाली बात अधिक समय तक स्मरण रहती है।
   - (v) कठिन और जटिल बात की अपेक्षा सरल और रोचक बात अधिक समय तक स्मरण रहती है।
   - (vi) अत्यधिक दुख, सुख, भय, निराशा आदि की बात मस्तिष्क पर इतनी गहरी छाप अंकित कर देती है कि वे बहुत समय तक स्मरण रहती है।

3. **पुनः स्मरण :–** स्मृति का तीसरा अंग है पुनः स्मरण। इसका अर्थ है सीखी हुई बात को अचेतन मन से चेतन मन में लाना। जो बात जितनी अच्छी तरह धारण की गई है उतनी ही सरलता से उसका पुनः स्मरण होता है पर ऐसा सदैव नहीं होता है। भय, चिन्ता, शीघ्रता परेशानी आदि पुनः स्मरण में बाधा उपस्थित करते है। बालक भय के कारण भली भांति पाठ को अच्छी तरह नहीं सुन पाता है। हम जल्दी में काम करना भूल जाते है।
4. **पहचान :–** स्मृति का चौथा अंग है पहचान। इसका अर्थ है फिर याद आने वाली बात में किसी प्रकार की गलती न करना। उदाहरण– हम पांच वर्ष पूर्व मोहन नामक व्यक्ति से दिल्ली में मिले थे। जब हम उससे फिर मिलते है तब उसके संबंध में सब बातों का ठीक–ठीक पुनः स्मरण हो जाता है। हम यह जानने में किसी प्रकार की गलती नहीं करते है कि वह कौन है, उसका क्या नाम है, हम उससे कब, कहां और क्यों मिले थे आदि।

5.2 अच्छी स्मृति के लक्षण :–

जीवन में वही व्यक्ति सफलता के शिखर पर शीघ्र पहुंचता है जिसकी स्मृति अच्छी होती है। ऐसा व्यक्ति भूतकाल की घटनाओं का स्मरण कर, वर्तमान में उनका लाभ उठाकर, भविष्य को अच्छा बनाता है।

स्टाउट के अनुसार "अच्छी स्मृति में निम्नलिखित गुण, लक्षण या विशेषताएं होती है:–

1. **शीघ्र अधिगम :–** अच्छी स्मृति का पहला गुण है जल्दी सीखना या याद होना। जो व्यक्ति किसी बात को शीघ्र सीख लेता है उसकी स्मृति अच्छी समझी जाती है।
2. **उत्तम धारण शक्ति :–** अच्छी स्मृति का दूसरा गुण है। सीखी हुई बात को बिना दोहराए हुए देर तक स्मरण रखना। जो व्यक्ति एक बात को जितने अधिक समय तक मस्तिष्क में धारण रख सकता है उसकी स्मृति उतनी ही अधिक अच्छी होती है।
3. **शीघ्र पुनः स्मरण :–** अच्छी स्मृति का तीसरा गुण है। सीखी हुई बात का शीघ्र याद आना। जिस व्यक्ति को सीखी हुई बात जितनी जल्दी याद आती है उसकी स्मृति उतनी ही अधिक अच्छी होती है।
4. **शीघ्र पहचान :–** अच्छी स्मृति का चौथा गुण है शीघ्र पहचान। किसी बात का शीघ्र पुनः स्मरण ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि आप शीघ्र ही यह जान जाये कि आप जिस बात को स्मरण करना चाहते है वही बात आपको याद आई है।
5. **अनावश्यक बातों की विस्मृति :–** अच्छी स्मृति का पांचवा गुण है अनावश्यक या व्यर्थ की बातों को भूल जाना। यदि ऐसा नहीं है तो मस्तिष्क को व्यर्थ में बहुत सी ऐसी बाते स्मरण रखनी पड़ती है जिनकी भविष्य में कभी आवश्यकता नही पड़ती है। वकील मुकदमें के समय उससे

संबंधित सब बातों को याद रखता है पर उसके समाप्त हो जाने पर उसमें से अनावश्यक बातों को भूल जाता है।

6. **उपयोगिता** – अच्छी स्मृति का अन्तिम गुण उपयोगिता है। इसका अभिप्राय यह है कि वही स्मृति अच्छी होती है जो अवसर आने पर उपयोगी सिद्ध होती है। यदि परीक्षा देते समय बालक स्मरण की हुई सब बातों को लिखने में सफल हो जाता है तो उसकी स्मृति उपयोगी है अन्यथा नहीं।

स्मृति की उन्नति के उपाय :–

एवेलिंग के अनुसार "वास्तव में स्मृति में उन्नति हमारी स्मरण करने की विधियों में उन्नति के अतिरिक्त और कुछ नहीं"। इस कथन की सत्यता के बावजूद भी कुछ उपाय या नियम ऐसे है जो स्मृति की उन्नति में सहायता देते है:–

1. **दृढ़ निश्चय** :– बालक जिस बात को याद करना चाहते है उसे याद करने के लिये दृढ़ निश्चय होना चाहिए।
2. **स्पष्ट ज्ञान** :– बालक जिस बात का स्मरण करना चाहते है उसका लाभ और उद्देश्य उन्हें स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए।
3. **प्रोत्साहन** :– बालकों को पाठ याद करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए।
4. **पहले से समझना** :– बालकों को जो पाठ याद करने के लिये दिया जाये उसका अर्थ उन्हें पहले ही पूर्ण रूप से समझा दिया जाना चाहिए।
5. **रूचि उत्पन्न करना** :– बालकों को स्मरण करने के लिए जो पाठ दिया जाये उसमें उनकी रूचि होनी चाहिए या रूचि उत्पन्न की जानी चाहिए।
6. **पूर्व ज्ञान पर आधारित** :– बालकों को जो नवीन तथ्य बताये जाये उनका उनके पूर्व ज्ञान से अधिक से अधिक संबंध स्थापित किया जाना चाहिए। पाठ के शिक्षण के समय भी उसमें आने वाले तथ्यों को दूसरे तथ्यों से संबंधित किया जाना चाहिए।
7. **स्मरण के अधिक अवसर** :– बालकों की स्मरण करने की क्रिया, निष्क्रिय न हो कर सक्रिय होनी चाहिए। अतः स्मरण करने के समय उनको अपनी ज्ञानेन्द्रियों का अधिक से अधिक प्रयोग करने का अवसर दिया जाना चाहए।
8. **दोहराना** :– बालकों द्वारा स्मरण किया गया पाठ कुछ–कुछ समय के पश्चात दोहराया जाना चाहिए।
9. **संवेगात्मक स्थिरता** :– पाठ याद करने के समय बालाकों में भय, क्रोध, कष्ट, थकान, परेशानी आदि नहीं होनी चाहिए। अन्यथा उन्हें पाठ स्मरण करने में बहुत देर लगती है और स्मरण करने के बाद वे उसे शीघ्र भूल जाते है।

10. एकाग्रता :– रायबर्न के अनुसार इस बात का पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए कि बालक अपने पाठ को एकाग्रचित्त हो कर याद करें।

11. स्मरण विधियां अपनाना :– कोलेसनिक के अनुसार स्मृति प्रशिक्षण की तीन मुख्य विधियां है:–

1. निरीक्षण शक्ति का विकास करना।
2. तार्किक शक्ति को बलवती बनाना।
3. निर्णय की प्रक्रिया में उन्नति करना।

यदि बालक इन नियमों और विधियों के अनुसार स्मरण करने का अभ्यास करें तो वे अपनी स्मृति को निश्चित रूप से प्रशिक्षित करके अपनी स्मरण शक्ति उन्नत कर सकते है। मैक्डूगल का यह कथन अक्षरशः सत्य है "अभ्यास द्वारा स्मृति में अत्यधिक उन्नति की जा सकती है।"

5.3 विस्मृति:–

स्मृति की भांति विस्मृति भी एक मानसिक क्रिया है। अन्तर केवल इतना है कि विस्मृति एक निष्क्रीय नकारात्मक क्रिया है। स्मृति के साथ विस्मृति का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। यदि विस्मृति अधिक होने लगती है तो यह व्यक्ति में असामान्य व्यवहार पैदा करती है।

जब हम कोई नई बात सीखते हैं या नया अनुभव प्राप्त करते हैं तब हमारे मस्तिष्क में उसका चित्र अंकित हो जाता हैं। हम अपनी स्मृति की सहायता से उस अनुभव को अपनी चेतना में फिर लाकर उसका स्मरण कर सकते हैं पर कभी–कभी हम ऐसा करने में सफल नहीं होते हैं। हमारी यही असफल क्रिया – 'विस्मृति' कहलाती है। दूसरे शब्दों में "भूतकाल के किसी अनुभव को वर्तमान चेतना में लाने की असफलता को 'विस्मृति' कहते हैं।

परिभाषाए:–

1. मन – "सीखी हुई बात को स्मरण रखने व पुनः स्मरण करने की असफलता को विस्मृति कहते है।"
2. ड्रेवर – "किसी समय प्रयास करने पर भी किसी पूर्व अनुभव का स्मरण करने या पहले सीखे हुए किसी कार्य को करने में असफलता।"
3. प्रायड – "विस्मरण वह प्रवृत्ति है जिसके द्वारा दुखद अनुभवों को स्मृति से अलग कर दिया जाता है।

विस्मृति के कारण :–

विस्मृति के कारणों को दो भागों में विभक्त किया गया है।

(अ) **सैद्धांतिक कारण** – बाधा, दमन और अनाभ्यास के सिद्धांत।

(ब) **सामान्य कारण** – समय का प्रभाव, रूचि क अभाव, विषय की मात्रा इत्यादि।

इन कारणों का क्रमबद्ध वर्णन निम्नानुसार है:–

1. **बाधा का सिद्धांत** :– इस सिद्धांत के अनुसार यदि हम एक पाठ को याद करने के बाद दूसरा पाठ याद करने लगते है, तो हमारे मस्तिष्क में पहले पाठ के स्मृति चिन्हों में बाधा पड़ती है। फलस्वरूप वे निर्बल होते चले जाते है और हम पहले पाठ को भूल जाते है।
2. **दमन का सिद्धांत** :– इस सिद्धांत के अनुसार हम दुखद और अपमान जनक घटनाओं को याद नहीं रखना चाहते है। अतः हम उनका दमन करते है। परिणामतः वे हमारे अचेतन मन में चली जाती है और हम उनको भूल जाते है।
3. **अनाभ्यास का सिद्धांत** :– थार्नडाइक एवं एबिंगहॉस ने विस्मृति का कारण अभ्यास का अभाव बताया है। यदि हम सीखी हुई बात का बार–बार अभ्यास नहीं करते है तो हम उसको भूल जाते है।
4. **समय का प्रभाव** :– हैरिस के अनुसार – सीखी हुई बात पर समय का प्रभाव पड़ता है। अधिक समय पहले सीखी हुई बात अधिक और कम समय पहले सीखी हुई बात कम भूलती हैं।
5. **रूचि, ध्यान व इच्छा का अभाव** :– जिस कार्य को हम जितनी कम रूचि, ध्यान और इच्छा से सीखते है उतनी ही जल्दी हम उसको भूलते है। स्टाउट के अनुसार– जिन बातों के प्रति हमारा ध्यान रहता है उन्हें हम स्मरण रखते है।
6. **विषय का स्वरूप** :– हमें सरल सार्थक, लाभप्रद बातें बहुत समय तक स्मरण रहती है। इसके विपरीत हम कठिन, निरर्थक और हानिप्रद बातों को शीघ्र ही भूल जाते है। मार्सेल के अनुसार – निरर्थक विषय की तुलना में सार्थक विषय का विस्मरण बहुत धीरे–धीरे होता है।
7. **विषय की मात्रा** :– विस्मरण, विषय की मात्रा के कारण भी होता है। हम छोटे विषय को देर से और लम्बे विषय को जल्दी भूलते है।
8. **सीखने में कमी** :– हम कम सीखी हुई बात को शीघ्र और भली प्रकार सीखी हुई बात को विलम्ब से भूलते है।
9. **सीखने की दोषपूर्ण नीति** :– यदि शिक्षक, बालकों को सीखने के लिए उचित विधियों का प्रयोग न करके दोषपूर्ण विधियों का प्रयोग करता है, तो वे उसको थोडे ही समय में भूल जाते हैं।
10. मानसिक आधात :– सिर में आधात या चोट लगने से स्नायुकोष्ठ छिन्न भिन्न हो जाते है। अतः उन पर बने स्मृति चिन्ह अस्तव्यस्त हो जाते है। फलस्वरूण, व्यक्ति स्मरण की हुई बातों को भूल जाता है।
11. **मानसिक द्वन्द** :– मानसिक द्वन्द के कारण मस्तिष्क में किसी न किसी प्रकार की परेशानी उत्पन्न हो जाती है। यह परेशानी, विस्मृति का कारण बनती है।
12. **मानसिक रोग** :– कुछ मानसिक रोग ऐसे है, जो स्मरण शक्ति को निर्बल बना देते है। जिसके फलस्वरूप विस्मरण की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार का एक मानसिक रोग–दुःसाध्य उन्माद है।

13. **मादक वस्तुओं का प्रयोग** :– मादक वस्तुओं का प्रयोग मानसिक शक्ति को क्षीण कर देता है। अतः विस्मरण एक स्वाभाविक बात हो जाती है।

14. **स्मरण न करने की इच्छा** :– यदि हम किसी बात को स्मरण नहीं रखना चाहते है तो हम उसे अवश्य भूल जाते है। **स्टर्ट व ओकड़न का कथन है** "हम बहुत सी बातों को स्मरण न रखने की इच्छा के कारण भूल जाते है।"

15. **संवेगात्मक असंतुलन** :– किसी संवेग के उत्तेजित होने पर व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक दशा में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। उस दशा में उसे पिछली बातों का स्मरण करना और कठिन हो जाता है। बालक भय के कारण भली प्रकार याद पाठ को भी भूल जाता है। भाटिया का कथन "संवेगात्मक असंतुलन विस्मृति के सामान्य कारण है।"

विस्मृति का महत्वः–

कालिन्स व ड्रेवर ने लिखा है "यह सत्य है कि विस्मरण, स्मरण के विपरीत है, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विस्मरण लगभग उतना ही लाभप्रद है जितना की स्मरण।"

विस्मरण लाभप्रद क्यों? बालक की शिक्षा में उसका कार्य महत्व और आवश्यकता क्या है? हम इनसे संबंधित तथ्यों पर निम्नांकित पंक्तियों में प्रकाश डाल रहे हैः–

1. **क्षणिक महत्व की बातों को भुलाना** :– बालक, विद्यालय में ऐसी अनेक बातें सीखता है, जो उसके लिए क्षणिक महत्व की होती है। अतः उसके लिए उन्हें स्थायी रूप से स्मरण न रख कर भुला देना ही अच्छा है। **कोलेसनिक के अनुसार** "जीवन के अनेक अनुभवों का केवल क्षणिक महत्व होता है और वे स्मरण रखने के योग्य नहीं होते है।"
2. **समान रूप से अनुपयोगी बातों को भुलाना** :– बालक प्रत्येक दिन अनेक बातें सीखता है। वे सब उसके लिए समान रूप से उपयोगी नहीं होती है। अतः जैसा कि **क्रो एवं क्रो** ने लिखा है– "सीखने वाले के लिए यह जानना आवश्यक है कि वह क्या स्मरण रखे और क्या भुला दे?"
3. **अस्त व्यस्तता से बचाव** :– यदि बालक के मस्तिष्क में सभी बातों के स्मृति चिन्ह अंकित होते चले जाएं तो उसके विचार पूर्ण रूप से अस्त व्यस्त हो जायेंगे। अतः अपने विचारों को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए उसे कुछ बातों का भुलाना अनिवार्य है। **स्र्टट एवं ओकडन** का मत है यदि हम अपने विचारों में व्यवस्था और बल चाहते है तो हमारे लिए विस्मरण आवश्यक है।
4. **दुखद अनुभवों को भूलना** :– बालक को अपने विद्यालय और पारिवारिक जीवन में समय–समय पर कटु अनुभव होते है। ये अनुभव स्मरण की प्रक्रिया में बाधा उपस्थित करते है। अतः इनका विस्मरण करके ही बालक विद्यार्जन के लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। भाटिया के शब्दों में "भली प्रकार स्मरण करने के लिए हमें बहुत कुछ भुला देना आवश्यक है।

5. **भाषा शिक्षण में उपयोगी :–** बालक शुद्ध लेखन और शुद्ध उच्चारण के अतिरिक्त विभिन्न विषयों में कुछ सीमा तक सफलता प्राप्त करने का इच्छुक रहता है। वह गलत कार्यों और गलत विधियों का विस्मरण करके ही ऐसा कर सकता है। मन के अनुसार "उचित प्रतिक्रया का अर्जन को करने के लिये हमें अनुचित प्रतिक्रियाओं को बहुधा भूल जाना आवश्यक है।"
6. **सीमित क्षेत्र का उपयोग :–** बालक का स्मृति क्षेत्र सीमित होता है। अतः यदि वह सब बातों को स्मरण रखे तो उसे अपने स्मृति क्षेत्र में नवीन बातों को स्थान देना असंभव हो जायेगा। इस दृष्टि से उसे पुरानी बातों का विस्मरण करना आवश्यक है। **कोलिन्स एवं ड्रेवर** का कथन है "विस्मरण किसी भी प्रकार के लाभप्रद अधिगम का आवश्यक अंग है।"
7. **पुरानी बातों को भूलकर नई बातों को सीखना :–** ऐसी अनेक बाते होती है, जिनको बालक पुरानी बातों को भूलकर ही सीख सकता है। जैसे– पढ़ने या लिखने की उपयुक्त विधियाँ। अतः उसे उन विधियों को भुला देना आवश्यक है, जिनका प्रयोग वह करता चला आ रहा है। **वुडवर्थ** के अनुसार "नई बातों का सीखना पुरानी बातों के स्मरण में बाधा डालता है और पुरानी बातों का स्मरण नई बातों को सीखने में बाधा डालता है।"

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि बालक की शिक्षा में विस्मरण का स्थान अति महत्वपूर्ण है। वह विस्मरण करके ही शिक्षा संबंधी नई बातों को सीख सकता है। रिबट ने ठीक लिखा है "स्मरण करने की एक शर्त यह है कि हमें विस्मरण करना चाहिए।"

5.4 विस्मृति कम करने के उपाय :–

विस्मृति का अर्थ है कि "अधिक समय तक स्मरण रखने या स्मृति में धारण रखने की क्षमता का न होना। अतः विस्मृति को कम करने या धारण शक्ति में उन्नति करने के लिए निम्नांकित उपायों को प्रयोग में लाया जा सकता है:–

1. **पाठ की विषयवस्तु :– कोलोस्निक का मत है** – पाठ की विषयवस्तु अर्थ–पूर्ण, क्रमबद्ध और बालक की मानसिक योग्यता के अनुरूप होनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की विषयवस्तु की विस्मृति की गति और मात्रा बहुत कम होती है। इसके अतिरिक्त पाठ में आवश्यकता से अधिक तथ्य, तिथियाँ और विस्तृत सूचनाएं नहीं होनी चाहिए क्योंकि इनकी विस्मृति की गति और मात्रा बहुत तीव्र होती है।

2. **पूरे पाठ का स्मरण :–** बालक को पूरा पाठ सोच समझ कर याद करना चाहिए। जब तक उसे पूरा पाठ याद न हो जाए, तब तक उसे स्मरण करने का कार्य स्थगित नहीं करना चाहिए। साथ ही उसे पाठ को आंशिक रूप से स्मरण नहीं करना चाहिए ऐसा करने से पाठ का भूल जाना आवश्यक है।

3. **पाठ का अधिक स्मरण** :– पाठ स्मरण हो जाने के बाद भी बालक को उसे कुछ समय तक और स्मरण करना चाहिए। इसका कारण बताते हुए नन ने लिखा है "पाठ स्मरण हो जाने के बाद जितना अधिक स्मरण किया जाता है उतना ही अधिक वह स्मृति में धारण रहता है।

4. **बालक का स्मरण करने में ध्यान** :– पाठ को स्मरण करते समय बालक का अपना पूर्ण ध्यान उस पर केन्द्रित रखना चाहिए। **वुडवर्थ** के शब्दों में "सीखने वाला जितना अधिक ध्यान देता है उतनी ही जल्दी वह सीखता है और बाद में उतनी ही अधिक देर में वह भूलता है।

5. **अधिक समय तक स्मरण रखने पर विचार** :– बालक को पाठ यह विचार करके स्मरण करना चाहिए कि उसे उसको बहुत समय तक याद रखना है। तभी वह उसे शीघ्र भूलने की संभावना का अंत कर सकता है। **बोरिंग , लैगफील्ड एवं वील्ड** ने लिखा है – "अधिक समय तक स्मरण रखने के विचार से याद किया हुआ पाठ अधिक समय तक स्मरण रहता है।

6. **विचार साहचर्य के नियमों का पालन** :– पाठ याद करते समय बालक को विचार साहचर्य के नियमों का पालन करना चाहिए। उसे नवीन तथ्यों और घटनाओं का उन तथ्यों और घटनाओं से संबंध स्थापित करना चाहिए, जिनको वह जानता है। ऐसा करने से वह संभवतः पाठ का कभी विस्मरण नहीं करेगा।

7. **पूर्ण व अन्तरयुक्त विधियों का प्रयोग** :– बालक को पाठ याद करने के लिए पूर्ण और अन्तरयुक्त विधियों का प्रयोग करना चाहिए। इसका कारण यह है कि खण्ड और अन्तरहीन विधियों की अपेक्षा इन विधियों से याद किए गए पाठ का विस्मरण कम होता है।

8. **सस्वर वाचन** :– बालक को पाठ बोल–बोल कर स्मरण करना चाहिए। **वुडवर्थ** के शब्दों में इसका कारण यह है "सक्रिय सस्वर वाचन के पश्चात विस्मरण की गति धीमी होती है।"

9. **स्मरण के बाद विश्राम** :– बालक को पाठ स्मरण करने के उपरांत कुछ समय तक विश्राम अवश्य करना चाहिए। ताकि पाठ के स्मृति चिन्ह उसके मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से अंकित हो जाए। वुडवर्थ के शब्दों में "सीखने के बाद कुछ समय तक विश्राम का महत्व अनेक परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया गया है।"

10 **पाठ की पुरावृत्ति** :– पाठ को स्मरण करने के बाद बालक को उसे थोड़े–थोड़े समय के उपरांत दोहराते रहना चाहिए। पाठ की जितनी ही अधिक पुनरावृत्ति की जाती है उतनी ही अधिक देर से

वह भूलता है। वुडवर्थ ने लिखा है "पुनः अधिगम स्मृति चिन्हों को सजीव बनाता है और विस्मरण को कम करता है।

11. **स्मरण करने के नियमों का प्रयोग** :– बालक को विस्मरण कम करने के लिए स्मरण करने की मितव्ययी विधियों का प्रयोग करना चाहिए। इसकी पुष्टि करते हुए वुडवर्थ ने लिखा है "स्मरण के लिए मितव्ययता के नियम धारण शक्ति के लिए भी लागू होते हैं।

इकाई सारांश

बुडवर्थ के अनुसार "जो बात पहले सीखी जा चुकी हैं, उसे स्मरण रखना ही स्मृति हैं।

स्मृति एक जटिल शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया हैं। स्मृति का मुख्य कार्य हैं हमें किसी पूर्व अनुभव का स्मरण कराना।

बुडवर्थ के अनुसार स्मृति के चार अंग हैं –

1. सीखना
2. धारण
3. पुनः स्मरण
4. पहचान

अच्छी स्मृति के लक्षण निम्नलिखित हैं –

1. शीघ्र अधिगम
2. उत्तम धारण शक्ति
3. शीघ्र पुनः स्मरण
4. शीघ्र पहचान
5. अनावश्यक बातों की विस्मृति
6. उपयोतिगता

विस्मृति

"भूतकाल के किसी अनुभव को वर्तमान चेतना में लाने की असफलता को 'विस्मृति' कहते है। विस्मृति भी एक मानसिक क्रिया है, यह निष्क्रिय तथा नकारात्मक क्रिया हैं?

विस्मृति दो प्रकार की होती है –

1. सक्रिय विस्मृति 2. निष्क्रिय विस्मृति

विस्मृति का महत्व –

विस्मृति, स्मृति के विपरीत अवश्य है, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से उतनी ही लाभप्रद एवं आवश्यक है।

1. क्षणिक महत्त्व की बातों को भुलाना।
2. समान रूप से अनुपयोगी बातों को भुलाना।
3. दुःखद अनुभवों को भूलना।
4. भाषा शिक्षण में उपयोगी।
5. पुरानी बातों को भूलकर नई बातों को सीखना।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न 1. स्मृति के अवयवों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. स्मृति की उन्नति के उपायों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3. विस्मरण किसे कहते है?

प्रश्न 4. विस्मृति के कारण लिखिए।

प्रश्न 5. विस्मृति का महत्व लिखिए।

— — — —

इकाई– 6

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई – 6 व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन।

विषयांश –

6.1 अर्थ एवं प्रकार।
6.2 संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं।
6.3 प्रभवित करने वाले कारक।
6.4 व्यक्तित्व मापन की विधियां।
6.5 वंशानुक्रम एवं वातावरण, अर्थ और महत्व।

प्रिय छात्राध्यापक!

गत् अध्याय में आपने स्मृति एवं विस्मृति के विषय में अध्ययन किया। प्रस्तुत अध्याय में व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन की विधियों की जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्त वंशानुक्रम एवं वातावरण का अर्थ एवं महत्व की जानकारी भी दी गई है।

6.1 व्यक्तित्व का अर्थ एवं प्रकार :–

सामान्यतः व्यक्तित्व से अभिप्राय व्यक्ति के रूप, रंग, कद, लंबाई, चौड़ाई, मोटाई, पतलापन अर्थात शारीरिक संरचना, व्यवहार तथा मृदुभाषी होने से लगाया जाता है। व्यक्तित्व में एक मनुष्य के न केवल शारीरिक और मानसिक गुणों का वरन् उसके सामाजिक गुणों का भी समावेश होता है।

मन के शब्दों में – "व्यक्तित्व की परिभाषा, व्यक्ति के ढांचे, व्यवहार की विधियों, रूचियों अभिवृत्तियों, क्षमताओं, योग्यताओं और कुशलताओं के सबसे विशिष्ट एकीकरण के रूप में की जा सकती है।"

वुडवर्थ के अनुसार " व्यक्तित्व व्यक्ति की संपूर्ण गुणात्मकता है।"

आलपोर्ट के अनुसार, "व्यक्तित्व, व्यक्ति के भीतर के उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो उसके वातावरण से अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करता है।"

व्यक्तित्व के प्रकार :–

व्यक्तित्व का वर्गीकरण अनेक विद्वानों द्वारा अनेक प्रकार से किया गया है। इनमें से निम्न तीन वर्गीकरणों को साधारणः स्वीकार किया जाता है।

1. शरीर रचना प्रकार।
2. समाजशास्त्रीय प्रकार।
3. मनोवैज्ञानिक प्रकार।

1. **शरीर रचना प्रकार :–** जर्मन विद्वान क्रेचमर ने शरीर रचना के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताए हैः–

   (i) **शक्तिहीन :–** इस प्रकार का व्यक्ति दुबला पतला और छोटे कंधो वाला होता है। उसकी भुजाएं पतली और सीना छोटा होता है। वह दूसरों की आलोचना करना पसंद करता है। पर दूसरों से अपनी आलोचना नहीं सुनना चाहता है।

   (ii) **खिलाड़ी :–** इस प्रकार के व्यक्ति का शरीर हष्ट–पुष्ट और स्वस्थ होता है। वह दूसरे व्यक्तियों से सामंजस्य करना चाहता है।

   (iii) **नाटा :–** इस प्रकार के व्यक्ति का शरीर मोटा, छोटा, गोल और चर्बी वाला होता है। वह आराम तलब व लोकप्रिय होता है।

2. **समाज–शास्त्रीय प्रकार :–** स्प्रेंगर ने व्यक्ति के सामाजिक कार्यों और स्थिति के आधार पर व्यक्तित्व के छः प्रकार बनाये है–

   (i) **सैद्धांतिक :–** इस प्रकार का व्यक्ति, व्यवहार की अपेक्षा सिद्धांत पर अधिक बल देता है। इस प्रकार के व्यक्ति दार्शनिक होते है।

   (ii) **आर्थिक :–** इस प्रकार का व्यक्ति, जीवन की सब बातों का आर्थिक दृष्टि से मूल्यांकन करता है। व्यापारी लोग इसी प्रकार के व्यक्ति होते है।

   (iii) **सामाजिक :–** इस प्रकार का व्यक्ति दया और सहानुभूति में विश्वास करता है। वह समाज कल्याण के लिये सब कुछ कर सकता है।

   (iv) **राजनीतिक :–** इस प्रकार का व्यक्ति सत्ता, प्रभुत्व और नियंत्रण में विश्वास रखने वाला होता है।

   (v) **धार्मिक :–** इस प्रकार के व्यक्ति का जीवन सादा और सरल होता है।

   (vi) **कलात्मक :–** इस प्रकार का व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को कला की दृष्टि से देखता है।

3. **मनोवैज्ञानिक प्रकार** :— मनोवैज्ञानिक जुग ने मनोवैज्ञानिक आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये है -

   1. **अन्तर्मुखी व्यक्तित्व** :— इस व्यक्तित्व के लक्षण, स्वभाव, आदते, अभिवृत्तियां, बाह्रय रूप से प्रकट नहीं होते है। अन्तर्मुखी व्यक्ति अपने आप में अधिक रूचि रखते है। इनकी मानसिक शक्ति का विशेष रूप से विकास होता है। वे संकोची होने के कारण अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। इस व्यक्तित्व के मनुष्य दार्शनिक और विचारक होते हैं।
   2. **बहिर्मुखी व्यक्तित्व** :— इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकते है। वह संसार के भौतिक और सामाजिक लक्ष्यों में विशेष रूचि रखते है। ऐसे व्यक्ति मिलनसार तथा सहयोगी होते हैं। वे बाह्रय सामंजस्य के प्रति सदैव सचेत रहते हैं और कार्यों एवं कथनों में अधिक विश्वास रखते हैं। इस व्यक्तित्व के मनुष्य अधिकांश रूप से सामाजिक, राजनैतिक या व्यापारिक नेता होते हैं।
   3. मध्य – मुखी – ऐसे व्यक्ति न तो अधिक अन्तर्मुखी होते हैं और न ही बहिर्मुखी होते हैं। इनकी स्थिति इन दोनों वर्गों के मध्य में होती है। दोनों के मिश्रण को ही मध्य–मुखी का नाम दिया गया है। इनका व्यवहार संतुलित होता है।

6.2 संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं :—

व्यक्तित्व शब्द में अनेक विशेषताएं निहित होती है:—

1. आत्म चेतना – व्यक्तित्व की पहली और मुख्य विशेषता आत्म चेतना होती है। इसी विशेषता के कारण मानव को सब जीवधारियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।
2. सामाजिकता – व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता सामाजिकता है। मानव में आत्म चेतना का विकास तभी होता है जब वह समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर क्रिया और अन्तःक्रिया करता है।
3. सामंजस्य – व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता सामंजस्यता है। व्यक्ति को न सिर्फ बाह्रय वातावरण से वरन अपने स्वयं के आन्तरिक जीवन से भी सामंजस्य करना पड़ता है।
4. **निर्देशित लक्ष्य प्राप्ति** – व्यक्तित्व की चौथी विशेषता निर्देशित लक्ष्य की प्राप्ति है। मानव व्यवहार का एक निश्चित उद्देश्य होता है कि वह लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संचालित होता है। अतः उसके व्यवहार और लक्ष्यों से अवगत होकर उसके व्यवहार का ढंग सहज ही अनुमान लगा सकते है।
5. **दृढ इच्छा शक्ति** -- दृढ़ इच्छा शक्ति व्यक्ति को जीवन की कठिनाइयों से संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने की क्षमता प्रदान करती है।

6. **शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य** -- व्यक्तित्व की छठवीं विशेषता शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य है। उसके अच्छे व्यक्तित्व के लिये अच्छे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का होना आवश्यक है।

7. **एकीकरण** -- जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर का कोई एक अवयव अकेला कार्य नहीं कर सकता उसी प्रकार व्यक्तित्व का कोई तत्व अकेला कार्य नहीं करता है। यह तत्व है– शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि।

8. विकास की निरंतरता – व्यक्तित्व की अन्तिम किन्तु महत्वपूर्ण विशेषता है– विकास की निरंतरता। जैसे–जैसे व्यक्ति के कार्यों, विचारों, अनुभवों, स्थितियों आदि में परिवर्तन होता है वैसे–वैसे उसके व्यक्तित्व के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।

6.3 प्रभावित करने वाले कारक :–

व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक निम्न है:–

1. वंशानुक्रम का प्रभाव – अनेक मनोवैज्ञानिक ने अपने अध्ययनों के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है। फ्रांसिस गाल्टन ने प्रमाणित किया है कि वंशानुक्रम के कारण ही व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक लक्षणों में भिन्नता दिखाई देती है। स्किनर तथा हैरिमैन के शब्दों में "मनुष्य का व्यक्तित्व स्वाभाविक विकास का परिणाम नहीं है। उसे अपने माता–पिता से कुछ निश्चित शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।
2. जैविक कारको का प्रभाव – मुख्य जैविक कारक जैसे नालिकाविहीन ग्रन्थियाँ, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ और शारीरिक रसायन का व्यक्तित्व के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
3. शारीरिक रचना का प्रभाव – शारीरिक रचना के अन्तर्गत शरीर के अंगों का पारस्परिक अनुपात, शरीर की लम्बाई और भार, नेत्रों और बालों का रंग, मुखाकृति आदि किसी न किसी रूप से व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं।
4. दैहिक प्रवृत्तियों का प्रभाव – दैहिक प्रवृत्तियों के कारण शरीर के अन्दर रासायनिक परिवर्तन होते हैं, जिनके फलस्वरूप व्यक्ति महत्वकांक्षी या आकांक्षाहीन, सक्रिय या निष्क्रिय बनता है।
5. मानसिक योग्यता का प्रभाव – व्यक्ति में जितनी अधिक मानसिक योग्यता होती है, उतना ही अधिक वह अपने व्यवहार को समाज के आदर्शों और प्रतिमानों के अनुकूल बनाने में सफल होते हैं।
6. विशिष्ठ रूचि का प्रभाव -- मनुष्य की सफलता का मुख्य आधार है -- उस कार्य में उसकी विशिष्ट रूचि जैसे कला या संगीत में विशिष्ट रूचि लेने वाला व्यक्ति ही कलाकार या संगीतज्ञ के रूप में उच्चतम स्थान पर पहुंच सकता है।

7. भौतिक वातावरण का प्रभाव – भौतिक या प्राकृतिक वातावरण, व्यक्तित्व पर अलग–अलग तरह की छाप छोड़ता है। अतः लोगों की आदतों, शारीरिक बनावट, रंग, स्वास्थ्य पर स्पष्ट अंतर मिलता है।

8. सामाजिक वातावरण का प्रभाव – सामाजिक वातावरण के सम्पर्क में आने पर ही मनुष्य में परिवर्तन होने लगता है। अतः समाज उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

9. सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव – समाज व्यक्तित्व का निर्माण करता है। संस्कृति उसके स्वरूप को निश्चित करती है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी मान्यता, रीति–रिवाज, धर्म–कर्म आदि होते है। मनुष्य जिस संस्कृति में जन्म लेता है, उसी के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का स्वरूप निश्चित होता है।

10. परिवार का प्रभाव – व्यक्तित्व का निर्माण का कार्य परिवार में आरंभ होता है, यदि बालक को परिवार में प्रेम, सुरक्षा और स्वतंत्रता का वातावरण मिलता है तो उसमें साहस, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता आदि गुणों का विकास होता है।

11. विद्यालय का प्रभाव – व्यक्तित्व के विकास पर विद्यालय की सब बातों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, जैसे पाठ्यक्रम, अनुशासन, शिक्षक–छात्र संबंध, खेलकूद आदि।

12. प्रभवित करने वाले अन्य कारक जैसे– बालक का पड़ोस, समूह और परिवार की इकलौती संतान, संवेगात्मक असंतुलन और माता की मृत्यु के कारण प्रेम का अभाव आदि।

6.4 व्यक्तित्व मापन की विधियां :–

व्यक्तित्व को अनेक गुणों या लक्षणों का गठन माना जाता है। इन गुणों के कारण कोई मनुष्य उत्साहपूर्ण तो कोई उत्साहहीन, कोई मिलनसार, तो कोई एकान्तप्रिय, कोई चिन्तामुक्त, तो कोई चिन्ताग्रस्त होता है।

व्यक्तित्व मापन के लिये विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है, जो दो दृष्टिकोणों पर आधारित है– अणुवादी दृष्टीकोण तथा सम्पूर्णवादी दृष्टिकोण।

मापन किसी भी दृष्टिकोण से किया जाये पर हमे यही मानकर चलना पड़ेगा कि व्यक्तित्व व्यक्ति के विभिन्न शीलगुणों का एक विशिष्ट संगठन है जो व्यवहार या इन गुणों द्वारा अपने को अभिव्यक्त करता है।

सामान्यतः व्यक्तित्व का मापन, दूसरे व्यक्ति के प्रभाव, विचार तथा निर्मित धारणा पर निर्भर है। व्यक्तित्व मापन की तीन प्रमुख विधियां है:-

1. आत्मनिष्ठ **(Subjective)** – यह विधियां व्यक्ति के अनुभव तथा धारणा पर निर्भर है। जीवन इतिहास, प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा आत्मकथा लेखन ऐसी विधिया है।

2. वस्तुनिष्ठ (**Objective**) :– बाह्य व्यवहार का अध्ययन करने में वस्तुनिष्ठ विधियों का प्रयोग किया जाता है। नियंत्रित निरीक्षण, मापन, समाजमिति, तथा शारीरिक परीक्षण ऐसी ही विधियां है।
3. प्रेक्षपण (**Projective**) :– इन विधियों में उत्तेजक प्रस्तुत किये जाते है। व्यक्ति अपने अचेतन व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है। प्रासंगिक अन्तर्बोध, बाल सम्प्रत्यय, वाक्यपूर्ति, कहानी रचना आदि ऐसी ही विधियां है।

हम यहां प्रमुख मापन विधियों का उल्लेख कर रहे है:–

1. प्रश्नावली विधि – इस विधि में कागज पर छपे हुए कथनों या प्रश्नों की सूची होती है, जिनके उत्तर "हाँ" या "नहीं" पर निशान लगाकर या लिखकर देने पड़ते हैं। इसलिए इस विधि को 'कागज–पेंसिल परीक्षण" भी कहते हैं। प्राप्त उत्तरों की सहायता से व्यक्तित्व का मापन किया जाता हैं इस प्रकार यह विधि प्रश्नों के उत्तरों के सहायता से व्यक्तित्व मापन की विधि है।
2. जीवन इतिहास विधि – इस विधि द्वारा किसी एक व्यक्ति की विशेषताओं, व्यवहार एवं उसके मानसिक जीवन का अध्ययन किया जाता है। यह एक प्रकार का व्यक्ति का इतिहास होता है। इसमें व्यक्ति के संबंध में उसके जीवन इतिहास, घरेलू पृष्ठभूमि, रूचियों, आवश्यकताओं, उसके कार्य–कलापों, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके मित्रों, पारिवारिक सदस्यों तथा अन्य संबंधित व्यक्तियों से मिलकर सूचनाएं एकत्रित करते हैं। इस विधि का प्रयोग प्रायः असाधारण व्यक्तियों या बालकों को समझने के लिए किया जाता है।
3. साक्षात्कार विधि – साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण वार्तालाप है। इस विधि में आमने सामने बैठकर किसी उद्देश्य को लेकर व्यक्तियों में वार्तालाप होता है।
4. क्रिया परीक्षण विधि – इस विधि द्वारा यह परीक्षण किया जाता है कि व्यक्ति, जीवन की वास्तविक परिस्थिति में किस प्रकार का कार्य या व्यवहार करता है। वह आत्म–प्रदर्शन, नेतृत्व करना, समूह के लिए कार्य करना या किस प्रकार का कार्य करना चाहता है। यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अध्ययन करने के लिए अति उपयोगी हैं।
5. परिस्थिति परीक्षण विधि – इस विधि में व्यक्ति को किसी विशेष परिस्थिति में रखकर उसके व्यवहार या किसी विशेष गुण की जांच की जाती है।
6. मानदण्ड मूल्यांकन विधि – इस विधि में व्यक्ति के किसी विशेष गुण या कार्य कुशलता का मूल्यांकन उसके सम्पर्क में रहने वाले लोगों से करवाया जाता है। उस गुण को पॉच या अधिक कोटियों में विभाजित कर दिया जाता है और मतदाताओं से उनके सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने का अनुरोध किया जाता है।
7. व्यक्तित्व परिसूची विधि – इस विधि में व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के प्रश्नों या कथनों की सूचियॉ तैयार की जाती हैं। व्यक्ति उनके उत्तर "हॉ" या "नही" में देकर परीक्षणकर्ता के समक्ष स्वयं अपना मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

8. प्रक्षेपण विधि – इस विधि द्वारा व्यक्ति अपनी सुप्त इच्छाओं को जो उसके अचेतन मन में बैठ गयी है किसी नई वस्तु की ओर परिवर्तित करके प्रकट करता है। इस प्रविधि में साधारण रूप से व्यक्ति के सम्मुख उद्दीपक स्थिति प्रस्तुत की जाती है तथा उसे ऐसा अवसर प्रदान किया जाता है कि वह अपने व्यक्तिगत जीवन से संबंधित छिपी हुई बातों को उन स्थितियों के माध्यम से प्रकट कर सके।
9. अन्य विधियां व परीक्षण – कुछ अन्य विधियों द्वारा भी व्यक्तित्व मापन किया जाता है जैसे – निरीक्षण विधि, आत्मकथा विधि मनोविश्लेषण विधि, समाजमिति विधि, चित्र–कहानी परीक्षण, मौखिक प्रक्षेपण परीक्षण आदि।

6.5 वंशानुक्रम एवं वातावरण :–

अर्थ एवं महत्व– प्राणी मात्र में स्वभाविक तौर से कुछ गुण परम्परागत रूप से प्राप्त होते है। इसका अभिप्राय यह है कि बालक रंग, रूप, आकृति, विद्वता आदि में माता–पिता से मिलता है। दूसरे शब्दों में उसे अपने माता–पिता के शारीरिक एवं मानसिक गुण प्राप्त होते है। इसी को हम वंशानुक्रम कहते है।

बी.एन. झा के अनुसार "वंशानुक्रम व्यक्ति की जन्मजात विशेषताओ का पूर्ण योग है।"

एच.ए. पीटरसन के अनुसाार "व्यक्ति को अपने माता–पिता से पूर्वजों की जो विशेषताएं प्राप्त है उसे वंशक्रम कहते है।"

कभी–कभी यह देखने को मिलता है कि विद्वान माता–पिता के बालक मूर्ख और मूर्ख माता पिता के बालक विद्वान होते है। इसका कारण यह है कि बालक को न केवल अपने माता पिता के वरन उनके पूर्वजों के भी गुण प्राप्त हो सकते है। प्रत्येक प्राणी को अपने पूर्वजों से तीन प्रमुख गुण प्राप्त होत है:–

1. पूर्वजों और माता पिता की समानता।
2. पूर्वजों और माता पिता की भिन्नता।
3. कुछ असामान्य विभिन्नताएं।

वंशानुक्रम का महत्व :–

1. वशानुक्रम के कारण ही बालकों में शारीरिक भिन्नता पायी जाती है। बालक के शारीरिक विकास का उसकी शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए शारीरिक विकास और वैयक्तिक भिन्नता का पूरा ध्यान रखते हुए शिक्षा व्यवस्था करनी चाहिए। इसे ध्यान में रखकर ही विभिन्न कक्षाओं में विषय वस्तु का निर्धारण किया जाता है।
2. वंशानुक्रम के कारण बालकों की जन्मजात क्षमताओं और योग्यताओं में अन्तर होता है जिससे सीखने की योग्यता में भी अन्तर आ जाता है। कुछ बालक किसी चीज का शीघ्र सीख लेते हैं

और कुछ देर से सीख पाते हैं। शिक्षा देते समय बालक की क्षमताओं और सीखने की योग्यताओं का विशेष ध्यान रखना चाहिए। और इन्हीं के अनुसार शिक्षण विधि का चयन करना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय में शिक्षा में अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instruction) की व्यवस्था की गई है। इस पद्धति से बालक अपनी क्षमताओं के अनुसार ज्ञान प्राप्त करता है।

3. बालकों को वंशानुक्रम से कुछ प्रवृत्तियां प्राप्त होती हैं जो वांछनीय तथा अवांछनीय दोनों प्रकार की हो सकती है। वंशानुक्रम के ज्ञान से इन प्रवृत्तियों का अध्ययन करके वांछनीय प्रवृत्तियों का विकास और अवांछनीय प्रवृत्तियों का दमन या मार्गान्तरीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार बालक के अभद्र या अवांछनीय व्यवहार को सुधारा जा सकता है।
4. कुछ बालकों में वंशानुक्रम जनित विकार आ जाते हैं। ऐसे बालक कक्षा में अपने को हीन अनुभव करते हैं। ऐसे बालकों को सहानुभूतिपूर्वक शिक्षा देनी चाहिए।
5. वंशानुक्रम में समानता, भिन्नता और प्रत्यागमन के नियमों के पूर्ण ज्ञान से बालकों को भावना ग्रन्थियों से बचाया जा सकता है। उदाहरणार्थ– प्रत्यागमन का नियम बताता है कि प्रतिभाशाली माता पिता की संतान मन्द बुद्धि हो सकती है। इसके ज्ञान से शिक्षक यह नहीं कह सकता कि तुम्हारे पिता को प्रतिभाशाली हैं और तुम निरे बुद्धू हो। इस प्रकार निर्दोष बालक भावना ग्रन्थियों का शिकार होने से बच जाता है।
6. वुडवर्थ के अनुसार, देहाती बालकों की अपेक्षा शहरी बालकों के मानसिक स्तर की श्रेष्ठता कुछ हद तक वंशानुक्रम के कारण होती है। इस बात का ज्ञान होने से शिक्षण को बालकों के मानसिक स्तरों के अनुरूप बनाकर उसे और भी प्रभावी बनाया जा सकता है।

वातावरण का अर्थ :–

वातावरण के लिये पर्यावरण शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है परि+आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर एवं आवरण का अर्थ है ढ़कने वाला। इस प्रकार पर्यावरण या वातावरण वह वस्तु है जो चारों ओर से ढ़के या घेरे हुए है। अतः व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ है वह उसका वातावरण है। इसमें वे सब तत्व सम्मिलित किये जा सकते है जो व्यक्ति के जीवन और व्यवहार को प्रभावित करते है।

वुडवर्थ के अनुसार "वातावरण में वह सब बाह्य तत्व आ जाते है जिन्हांने व्यक्ति को जीवन प्रारंभ करने के समय से प्रभावित किया है।"

रॉस के अनुसार " वातावरण वह बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।"

अतः वातावरण व्यक्ति को प्रभावित करता है। इसमें बाह्रय तत्व आते है। वातावरण किसी एक तत्व का नाम नहीं अपितु एक समूह तत्व का नाम है।

इस दृष्टि से वातावरण व्यक्ति को उसके विकास में वांछित सहायता प्रदान करता हैं।

वातावरण का महत्व :–

1. बालक अपना अधिकांश समय अपने परिवार, पड़ोस, मोहल्ले तथा खेल के मैदान में व्यतीत करता है जिससे उसके विकास पर इनका प्रभाव पड़ता है। इन स्थानों के वातावरण का ज्ञान होने पर बालक को उचित निर्देशन देकर उसके विकास को सही दिशा प्रदान की जा सकती है। इसके साथ ही विकास संबंधी समस्याओं का समाधान भी किया जा सकता है।
2. वातावरण संबंधी ज्ञान बालक की कुसमायोजन संबंधी समस्याओं को सुलझाने मे सहायक होता है। यदि कोई बालक दूषित वातावरण से आता है तो उसकी उपेक्षा न करके ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जिससे उस वातावरण का प्रभाव कम हो सके और बालक के व्यवहार में सुधार हो सकें।
3. वातावरण से संबंधित परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि बालक के व्यवहार पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। इसका ज्ञान होने के कारण ही विद्यालय में अनुकूल शैक्षिक वातावरण बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इस सबके लिए पुस्तकालय, खेल कूद, व्यायाम के साथ ही अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार की क्रियाओं से परिपूर्ण वातावरण का प्रभाव बालक की भावनाओं पर व्यापक रूप से पड़ता है। परिणामतः चरित्र निर्माण में वातावरण काफी सहायक होता है।
4. न्यूमैन तथा फ्रीमैन ने जुड़वां बच्चों पर अध्ययन करके यह सिद्ध कर दिया है कि शैक्षिक उपलब्धियों, व्यक्तित्व और स्वभाव पर वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है।

   न्यूमैन के अनुसार – "वातावरण द्वारा शारीरिक लक्षण सबसे कम प्रभावित होते है, बुद्धि उससे अधिक, शिक्षा तथा ज्ञान प्राप्ति उससे भी अधिक तथा व्यक्तित्व एवं स्वभाव सबसे अधिक।"

   इस ज्ञान के फलस्वरूप शिक्षक, कक्षा के वातावरण को अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर सकता है।
5. बालक के विकास की दिशा को वातावरण निश्चित करता है। अनुकूल वातावरण मिलने पर बालक सदाचारी और चरित्रवान बनता है तथा प्रतिकूल वातावरण मिलने पर वह दुराचारी और चरित्रहीन हो सकता है। इस बात का ज्ञान होने से अभिभावक विद्यालय से बाहर के वातावरण और शिक्षक विद्यालयीय वातावरण को नियंत्रित कर अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते हैं जिससे बालक का सही दिशा में विकास हो सके।
6. शिक्षा, बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है। इन अन्तर्निहित शक्तियों का स्वाभविक विकास उपयुक्त वातावरण में ही हो सकता है। बालक की मूलप्रवृत्तियां उसे वंशानुक्रम से प्राप्त होती है, किन्तु उसका विकास उपयुक्त वातावरण मे ही होता है।

7. प्रत्येक समाज का एक विशिष्ट वातावरण होता है। बालक को सामाजिक वातावरण से ही अनुकूलन करना पड़ता है। इस बात से पूर्ण परिचित शिक्षक, विद्यालय को लघु समाज का रूप प्रदान कर बालकों को उनके सामाजिक वातावरण से अनुकूलन करने की शिक्षा प्रदान कर सकता है।
8. वातावरण के महत्व से परिचित शिक्षक ऐसा वातावरण तैयार कर सकता है जिससे बालकों में विचारों की उचित अभिव्यक्ति, शिष्ट सामाजिक व्यवहार, कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान, स्वाभविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण आदि गुणों का अधिक से अधिक विकास हो सके।

इकाई सारांश

व्यक्तित्व में एक मनुष्य के न केवल शारीरिक और मानसिक गुणों का वरन उसके सामाजिक गुणों का भी समावेश होता है।

व्यक्तित्व के प्रकारः–

1. शरीर रचना प्रकार।
2. समाजशास्त्रीय प्रकार।
3. मनोवैज्ञानिक प्रकार।

संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएंः– आत्म चेतना, सामंजस्य, सामाजिकता, निर्देशित लक्ष्य प्राप्ति, दृढ़ इच्छाशक्ति, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, एकता एवं विकास की निरंतरता।

व्यक्तित्व मापन की विधियाँ :– आत्मनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ एवं प्रक्षेपण।

वंशानुक्रम एवं वातारण :– माता पिता के स्वभाविक रूप से प्राप्त शारीरिक व मानसिक विशिष्टताओं को वंशानुक्रम कहते है।

वंशानुक्रम के द्वारा निर्धारित शारीरिक तथा मानसिक विशिष्टताओं के अतिरिक्त जो कुछ भी बालक के आस पास है वह सब वातावरण है। वातावरण तीन प्रकार का होता हैः–

1. प्राकृतिक
2. सांस्कृतिक
3. सामाजिक वातावरण।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न 1. व्यक्तित्व की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं लिखिए।

प्रश्न 3. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक लिखिए।

प्रश्न 4. व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5. व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 6. व्यक्तित्व के प्रकार लिखिए।

— — — —

इकाई– 7

विषय -- शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई –7 बुद्धि एवं बुद्धि मापन

विषयांश–
7.1 परिचय, परिभाषा एवं सिद्धांत
7.2 बुद्धि– लब्धि एवं उसका मापन।
7.3 बुद्धि परीक्षण के प्रकार
7.4 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता।

प्रिय छात्राध्यापक!

पूर्व पाठ में आपने व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन के विषय में जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत अध्याय में बुद्धि एवं बुद्धिमापन के विषय में आपको जानकारी दी जावेगी।

7.1 बुद्धि का परिचय, परिभाषा एवं सिद्धांत

शिक्षा मनोविज्ञान में बुद्धि के ऊपर सर्वाधिक कार्य किया गया है। 17वीं शताब्दी से ही दर्शन के साथ मनोविज्ञान के अध्ययन पर बुद्धि के स्वरूप संरचना प्रकार व सैद्धांतिक आधार की चर्चा प्रारंभ हो गई थी।

जहाँ तक बुद्धि शब्द की परिभाषा का प्रश्न है तो मनोविज्ञानिकों ने इसे तीन श्रेणियों में विभक्त किया है।

1. समायोजन
2. सीखने की क्षमता
3. अमूर्त चिंतन

अंग्रेजी में बुद्धि को construct के नाम से जाना जाता है। व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर हर व्यक्ति मे बुद्धि का स्तर अनुवांशिकी एवं पर्यावरणीय कारकों के प्रभाव के कारण अलग अलग होता है।

ई.एल. थार्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार बताए हैं

1) सामाजिक बुद्धि 2) अमूर्त बुद्धि 3) मूर्त बुद्धि

1) सामाजिक बुद्धि (Social Intelliegence)– सामाजिक बुद्धि से तात्पर्य वैसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को ठीक ढंग से समझता है व व्यवहार कुशलता दिखा पाता है। ऐसे लोगों का सामाजिक संबंध बहुत ही अच्छा होता है व समाज में उनकी बहुत इज्जत होती है। जैसे अच्छे नेता, शिक्षक इत्यादि।

2) अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelliegence) – अमूर्त बुद्धि से तात्पर्य वैसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति शाब्दिक तथा गणितीय संकेतों व चिन्हों को आसानी से समझ पाता है व उनकी उचित व्याख्या कर पाता है ऐसे व्यक्ति जिनमें अमूर्त बुद्धि अधिक होती हैं सफल कलाकार, पेंटर व गणितज्ञ होते हैं।

3) मूर्त बुद्धि (Concrete Intelegence)– मूर्त बुद्धि से तात्पर्य ऐसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति ठोस वस्तुओं का महत्व समझता हैं तथा उसका उपयोग ठीक ढंग से विभिन्न परिस्थितियों में करता है ऐसे बुद्धि वाले व्यक्ति सफल व्यापारी बन सकते हैं।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को इस प्रकार परिभाषित किया है –

मन के अनुसार "नवीन परिस्थितियों को झेलने की मस्तिष्क की नमनीयता।"

बंकिन्घम के अनुसार "सीखने की योग्यता ही बुद्धि है।"

बर्ट के अनुसार "बुद्धि अच्छी तरह निर्णय करने, समझने एवं तर्क करने की योग्यता है।

वुडवर्थ के अनुसार "बुद्धि कार्य करने की एक विधि है।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बुद्धि में अतीत के अनुभवों का प्रयोग नवीन परिस्थितियों में समायोजन, परिस्थिति को समझना तथा क्रिया को व्यापक रूप से समझना ही बुद्धि है।

बुद्धि के विषय में एक मत यह विकसित हो रहा हैं कि बुद्धि नामक कोई भी तथ्य नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी क्षमता होती है। एक व्यक्ति एक क्षेत्र में अपनी योग्यता तथा क्षमता का लाभ उठाता है तो दूसरा व्यक्ति दूसरे क्षेत्र में लाभ उठाता है।

बुद्धि के सिद्धांत :–

बुद्धि के अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किये गये है जो उसके स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डालते है। इसके प्रमुख सिद्धांत है–

1. एक खण्ड का सिद्धांत।
2. दो खण्ड का सिद्धांत।
3. तीन खण्ड का सिद्धांत
4. बहु खण्ड का सिद्धांत।
5. मात्रा सिद्धांत।
6. वर्ग घटक सिद्धांत।
7. क्रमिक महत्व का सिद्धांत

1. **एक खण्ड का सिद्धांत :–** इस सिद्धांत के प्रतिपादक बिनेट और टर्मन है। उन्होंने बुद्धि को एक अखण्ड और अविभाज्य इकाई माना है। उनका मत है कि व्यक्ति की विभिन्न मानसिक योग्यताएं एक इकाई के रूप में कार्य करती है।
2. **दो खण्ड का सिद्धांत :–** इस सिद्धांत का प्रतिपादक स्पीयरमैन है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में दो प्रकार की बुद्धि होती है– सामान्य तथा विशिष्ट।
3. **तीन खण्ड का सिद्धांत :–** यह सिद्धांत भी स्पीयरमैन के नाम से संबंधित है। उसने इसका नाम सामूहिक खण्ड दिया। उसने बुद्धि का एक खण्ड और बनाया।
4. **बहुखण्ड का सिद्धांत :–** स्पीयरमैन के बुद्धि के सिद्धांत पर आगे कार्य करके गिलफर्ड ने "बहुखण्ड का सिद्धांत" प्रतिपादित किया।
5. **मात्रा सिद्धांत :–** इस सिद्धांत का प्रतिपादक थार्नडाइक है। इनका मत है कि मस्तिष्क का गुण स्नायु तन्तुओं की मात्रा पर निर्भर रहता है।
6. **वर्ग घटक सिद्धांत :–** जी. थामसन ने बुद्धि को अनेक विशिष्ट योग्यताओं तथा विशेषताओं का समूह माना है, एक ही वर्ग में अनेक प्रकार की विशेषताएं होती है।
7. **क्रमिक महत्व का सिद्धांत :–** बर्ट तथा टर्मन ने मानसिक योग्यताओं को क्रमानुसार महत्व दिया है। यह क्रम इस प्रकार है–

   1. सामान्य।
   2. स्मरण, चिन्तन, तर्क, कल्पना।
   3. विशेष मानसिक योग्यता।

7.2 बुद्धि लब्धि एवं उसका मापन :–

बुद्धि परीक्षण का आधार मानसिक एवं शारीरिक आयु के मध्य का संबंध है। बुद्धि परीक्षा के परिणाम बुद्धि लब्धि के द्वारा दिखाये जाते है। बुद्धि लब्धि मानसिक आयु के अभाव में मापी नही जा सकती।

मानसिक आयु :– मानसिक आयु बालक या व्यक्ति की सामान्य मानसिक योग्यता बताती है। गेट्स के अनुसार मानसिक आयु हमें किसी व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा के समय बुद्धि परीक्षा द्वारा ज्ञात की जाने वाली सामान्य मानसिक योग्यता के बारे में बताती है।

बुद्धिलब्धि का अर्थ :– बुद्धिलब्धि, बालक या व्यक्ति की सामान्य योग्यता के विकास की गति बताती है। कोल के शब्दों में "बुद्धिलब्धि यह बताती है कि मानसिक योग्यता में किस गति से विकास हो रहा है।"

बुद्धिलब्धि निकालने की विधि :– मानसिक आयु का विचार आरंभ करने का श्रेय बिने (Binnet) को प्राप्त है। बुद्धि लब्धि निकालने का सूत्र –

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{जीवन या वास्तविक आयु}} \times 100$$

उदाहरणार्थ यदि बालक की मानसिक आयु 10 वर्ष और जीवन या वास्तविक आयु 8 वर्ष है, तो उसकी बुद्धि लब्धि 125 होगी जैसे–

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{10}{8} \times 100 = 125$$

परीक्षणों से प्राप्त अंकों को तालिका के अनुसार मानसिक आयु में परिवर्तित किया जाता है।

7.3 बुद्धि परीक्षण के प्रकार :–

बुद्धि परीक्षाओं को सामान्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. वैयक्तिक
2. सामूहिक

1. **वैयक्तिक बुद्धि परीक्षा** :– यह परीक्षा एक समय में एक व्यक्ति की ली जाती है।
2. **सामूहिक बुद्धि परीक्षा** :– यह परीक्षा एक समय में अनेक व्यक्तियों की ली जाती है। इसका आरंभ प्रथम विश्वयुद्ध के समय अमरीका में हुआ।

वैयक्तिक और सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं के निम्न रूप होते है।

1. शाब्दिक
2. अशाब्दिक
3. क्रियात्मक

शाब्दिक परीक्षण वह है जिन्हें हल करने के लिये शाब्दिक या भाषा का ज्ञान आवश्यक होता है। अर्थात अक्षरों एवं शब्दों के ज्ञान के साथ संख्या ज्ञान भी आवश्यक है।

अशाब्दिक परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर, चित्रों, आकारों व अन्य सामाग्रियों के माध्यम द्वारा दिये जाते हैं। जिस देश में कई भाषायें बोली जाती हैं उस देश के लोगों की बुद्धि परीक्षण के लिये अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं का ही उपयोग किया जाता है।

क्रियात्मक इसका मुख्य उद्देश्य होता है कि व्यक्ति को लिखने पढ़ने का कितना ज्ञान है। क्रियात्मक परीक्षा में उन व्यक्तियों की परीक्षा ली जाती है जिनको भाषा का कम ज्ञान होता है या जो लिखना पढ़ना नहीं जानते। इस परीक्षा विधि में वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है और परीक्षार्थियों से कुछ समस्यापूर्ण कार्य करने के लिये कहा जाता है।

7.4 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता :–

प्रायः सभी विद्वान यह मानते है कि बुद्धि परीक्षाओं से सीखने की क्षमता के विषय में उपयोगी जानकारियाँ मिलती है। अतः एक सफल अध्यापक इन परीक्षाओं का विस्तृत ज्ञान रखना चाहिए। यह परीक्षायें बालको की विभिन्न विषयगत क्षमताओं का ज्ञान कराने में उसकी सहायता करती है। शिक्षा में इनका प्रयोग अनेक व्यवहारिक कार्यों के लिये किया जाता है।

1. सर्वोत्तम बालक का चुनाव **(Selection of Best)** – बुद्धि परीक्षाओं की सहायता से विद्यालय–प्रवेश छात्रवृत्तियों, वाद–विवाद और इसी प्रकार की अन्य प्रतियोगिताओं के लिए सर्वोत्तम बालकों का चुनाव किया जा सकता है।
2. पिछड़े हुए बालकों का चुनाव **(Selection of Backward)** – बुद्धि–परीक्षाओं का प्रयोग करके, पिछड़े हुए और मानसिक एवं शारीरिक दोषों वाले बालकों का सरलता से चुनाव किया जा सकता है। चुनाव किए जाने के बाद उनको शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशिष्ट विद्यालयों में भेजा जा सकता है।
3. अपराधी व समस्यात्मक बालकों का सुधार (Reform of Delinquents and Problematics) – बुद्धि परीक्षाओं द्वारा यह मालूम करने का प्रयास किया जाता है कि बालक–अपराधी, असन्तुलित और समस्यात्मक क्यों हैं?
4. बालकों का वर्गीकरण **(Classification of Children)** – बुद्धि–परीक्षाओं के आधार पर कक्षा के बालकों को तीव्र बुद्धि, मन्द और साधारण बुद्धि वाले बालकों में विभक्त करके, उनको अलग–अलग शिक्षा दी जा सकती है।
5. बालकों की क्षमता के अनुसार कार्य **(Work According to Children's Capacity)** – गेट्स एवं अन्य (Gates & Others, P. 269) के अनुसार – बुद्धि–परीक्षाओं द्वारा बालकों की सामान्य

योग्यता और मानसिक आयु को ज्ञात करके यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनमें कार्य करने की कितनी क्षमता है। अतः उनको उनकी क्षमता के अनुसर कार्य दिया जा सकता है।

6. **बालकों की विशिष्ट योग्यताओं का ज्ञान (Knowledge of Abilities)** – बुद्धि परीक्षओं की सहायता से बालकों की विशिष्ट योग्यताओं की जानकारी प्राप्त करे, उनको उचित शैक्षिक निर्देशन दिया जा सकता है। अतः वे अधिक प्रगति कर सकते है।
7. **बालकों की व्यावसायिक योग्यता का ज्ञान (Knowedge of Vocations)** – बुद्धि परीक्षाओं का सतर्कता से प्रयोग करके, बालकों की व्यावसायिक योग्यताओं का अनुमान लगाया जा सकता हैं। अतः उन्हें अपनी योग्यताओं के अनुसार व्यवसायों का चयन करने के लिए परामर्श दिया जा सकता है।
8. **बालकों को भावी सफलताओं का ज्ञान (Knowledge of Result)** – डगलस एवं हालैण्ड का कथन हैं – "बुद्धि परीक्षाएँ छात्रों की भावी सफलताओं की भविष्यवाणी करती हैं।" उनके माता पिता उनके भावी सफल कार्यों को ध्यान में रखकर उनके लिए शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था कर सकते हैं। फलस्वरूप, बालक अपने भावी जीवन में सफल हो सकते हैं।
9. **अपव्यय का निवारण (Eradication of Wastage)** – सब बालकों में सब विद्यालय–विषयों के लिए समान योग्यता नहीं होती है। फलस्वरूप, अनेक बालक परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होने के कारण विद्याध्ययन स्थगित कर देते हैं। इस अपव्यय का निवारण करने के लिए बुद्धि परीक्षाओं द्वारा बालकों की योग्यताओं को ज्ञात कर लिया जाता है और इन योग्यताओं के अनुसार उनको पाठ्य–विषयों का चुनाव करने का निर्देशन दिया जाता है।
10. **राष्ट्र के बालकों की बुद्धि का ज्ञान (Knowledge of intelligence)** – बुद्धि परीक्षाओं द्वारा राष्ट्र के किसी वय वर्ग के बालकों की बैाद्धिक योग्यता को ज्ञात किया जा सकता है। बुद्धि परीक्षण आज के युग में जॉब के लिये अनिवार्य हो गये हैं। प्रत्येक प्रशिक्षण तथा सेवायोजन के लिये अभ्यर्थियों के चयन के आधार में एक बुद्धि परीक्षण भी है।

विद्यालय में प्रवेश के समय बालक की बुद्धि के मापन की आवश्यकता पड़ती है। बुद्धि परीक्षण के आधार पर छात्रों की पाठ्यविषयों के चुनाव में सहायता कर सकते है। छात्र को विज्ञान, साहित्य, कॉमर्स आदि वर्गों में पढ़ने की सलाह दी जा सकती है। कुशाग्र बुद्धि वाले को कठिन विषय तथा मन्द बुद्धि वालों को सरल विषय लेने का परामर्श दिया जा सकता है।

इकाई सारांश–

वुडवर्थ के अनुसार "बुद्धि कार्य करने की एक विधि है।" बुद्धि में अतीत के अनुभवों का प्रयोग, नवीन परिस्थितियों में समायोजन, परिस्थिति को समझना तथा क्रिया को व्यापक रूप से देखना सम्मिलित है। बुद्धि में निम्न प्रकार की योग्यताएं मानी जाती है–

1. सीखने की योग्यता।
2. अमूर्त चिंतन की योग्यता।
3. समस्या का समाधान करने की योग्यता।
4. अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता।
5. संबंधों को समझने की योग्यता।
6. अपने वातावरण से समायोजन करने की योग्यता।

बुद्धिलब्धि :– बुद्धि लब्धि, बालक या व्यक्ति की सामान्य योग्यता के विकास की गति बताती है।
बुद्धि लब्धि निकालने का सूत्र –

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

बुद्धि परीक्षण के प्रकार :– बुद्धि परीक्षाओं को सामान्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. वैयक्तिक बुद्धि परीक्षा।
2. सामूहिक बुद्धि परीक्षा।

बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता :– बुद्धि परीक्षाओं से सीखने की क्षमता के विषय में उपयोगी जानकारियां मिलती है।

पाठ्गत प्रश्न :–

प्रश्न 1. बुद्धि को परिभाषित कीजिए?

प्रश्न 2 बुद्धि कितने प्रकार की होती हैं?

प्रश्न 3 बुद्धि के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 4. वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न 5. बुद्धि परीक्षण के दो उपयोग लिखिये?

— — — —

इकाई– 8

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई–8 अभिक्षमता एवं अभिक्षमता मापन (Aptitude)

8.1 अर्थ, परिभाषा एवं महत्व।
8.2 मापन (अभिक्षमता परीक्षण द्वारा)
8.3 अभिक्षमता परीक्षणों के व्यवहारिक उपयोग।

प्रिय छात्राध्यापक!

प्रतिदिन के जीवन में व्यक्तियों, अध्यापकों, अभिभावकों, मिल मालिकों तथा अन्य व्यवसाय या कला से संबंधित व्यक्तियों द्वारा यह कथन उनसे संबंधित बालकों छात्रों के लिये कहा जाता है कि वह कला, विद्या, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, नृत्य, गायन, वादन, अभिनय या किसी भी क्षेत्र में योग्यता रखता है जो उसके लिये ईश्वरीय वरदान या देन कही जाती है किन्तु मनोवैज्ञानिक के लिये यह अभिक्षमता है।

8.1 अर्थ, परिभाषा एवं महत्व

अभिक्षमता किसी एक क्षेत्र या समूह मे व्यक्ति की कार्य कुशलता की विशिष्ट योग्यता अथवा विशिष्ट क्षमता है।

बालक के विकास एवं व्यक्ति की व्यावसायिक सफलता में घर पर माता–पिता अभिक्षमता के महत्व को समझ सके तो बालक के समुचित विकास हेतु उपयुक्त पर्यावरण तैयार किया जा सकता है जिससे घर रूपी खान में छिपे हुए बालक रूपी हीरों की चमक दिखाने से अवसरों की अधिक संभावना रहेगी अतएव अभिक्षमता मापन का मुख्य उद्देश्य बालक की छिपी हुई एवं अप्रत्यक्ष योग्यताओं को पहचान कर उसे उचित पर्यावरण प्रदान करना है जिससे बालक या व्यक्ति को उसकी अभिक्षमताओं एवं रूचि के अनुसार शिक्षा दी जा सके।

परिभाषा :–

अभिक्षमता की परिभाषा के संबंध में मनोवैज्ञानिकों में मतैव्य नहीं है। फिर भी इस संबंध में दो प्रमुख विचारधाराएं प्रचलित है। एक विचारधारा के अनुसार अभिक्षमता जन्मजात अथवा अर्जित है। जबकि दूसरी विचारधारा के दृष्टिकोण से अभिक्षमता एक गुण है अथवा बहुत से गुणों का सम्मिलित प्रभाव है।

बिंघम :–

"अभिक्षमता किसी व्यक्ति के प्रशिक्षण के पश्चात उसके ज्ञान, दक्षता या प्रतिक्रियाओं को सीखने की योग्यता है"

दूसरे शब्दों, अभिक्षमता से हमारा आशय व्यक्ति की उस तत्परता अथवा रूझान से है जो किसी पेशे या कार्य में भावी सफलता पाने हेतु आवश्यक होती है तथा जिसका प्रस्फुटन शिक्षा एवं अभ्यास के द्वारा होता है। अतएव बिंघम का निष्कर्ष है कि अभिक्षमता एक गुण नहीं है बल्की यह तो बहुत से गुणों का सम्मिलित प्रभाव है तथा विभिन्न अभिक्षमताओं में विभिन्न गुणों के मिश्रणों की आवश्यकता होती है।

अभिक्षमता का महत्व :–

बिंघम के अनुसार :–

1. व्यक्ति की अभिक्षमता वर्तमान गुणों का वह समुच्चय है जो उसकी भविष्य की क्षमताओं की ओर इंगित करता है।
2. यह व्यक्ति की जन्मजात योग्यता ही नहीं होती बल्कि किसी कार्य को करने में उसकी प्रवीणता के भाव को भी व्यक्त करती है।
3. यह किसी वस्तु का नाम न होकर अमूर्त संज्ञा है। चूँकि यह व्यक्ति का अंग समझी जाती है इसलिए यह व्यक्ति के गुण या उसकी विशेषता की ओर संकेत करती है।
4. वर्तमान वस्तुस्थिति होने पर भी अभिक्षमता का निर्देश भविष्य की ओर होता है यह क्षमताओं की प्रतीत होती है।
5. अभिक्षमता का रूचि योग्यता एवं संतुष्टि से घनिष्ठ संबंध होता है।

इसके अतिरिक्त 'सुपर' ने अभिक्षमता की विशेषताओं में विशिष्टता, एकात्मक रचना, सीखने की सुविधा एवं स्थिरता को महत्व दिया। अभिक्षमता के जन्मजात एवं अर्जित होने के संबंध में बिंघम का विचार है कि किसी भी अभिक्षमता के विकास में जन्मजात एवं अर्जित गुण के मध्य परस्पर संबंध होता है।

8.2 अभिक्षमता परीक्षण का अर्थ:–

अभिक्षमता परीक्षण व्यक्ति की किसी विशेष प्रकार के कार्य को करने वाली बीजभूत योग्यता का मापन करते है।

फ्रीमैन (1965) अभिक्षमता परीक्षण वह परीक्षण है जिसके सहारे किसी खास क्षेत्र में कोई विशिष्ट कार्य करने में व्यक्ति की प्राप्त क्षमता का मापन किया जाता है।

अभिक्षमता परीक्षण (मापन) प्रकार :– दो प्रकार के होते हैं। (I) एक कारक (II) बहु कारक

1. एक कारक अभिक्षमता परीक्षण में एक ही तरह की अभिक्षमता की माप की जाती है।
   जैसे : मिनीसोटा यांत्रिक अभिक्षमता
2. बहुकारक : इसमें कई स्वतंत्र अभिक्षमताओं की परीक्षण मात्रा होती है जो भिन्न–भिन्न अभिक्षमताओं का परीक्षण एक साथ करती है जैसे – फ्लैन गन एप्टीटयूड क्लासीफिकेशन टेस्ट (FACT) जो 21 अभिक्षमताओं का परीक्षण एक साथ करती है।

कुछ यांत्रिक योग्यता को मापने वाले परीक्षण :–

1. **मिनीसोटा यांत्रिक एसेम्बली परीक्षण :–** इसके द्वारा व्यक्ति की योग्यता का मापन विभिन्न यांत्रिक उपकरणों को एक साथ रखने में किया जाता है। इस परीक्षण में तीन–तीन उपकरण, तीन भिन्न–भिन्न बाक्सों में रखे जाते है। प्रथम बाक्स में नौ उपकरण, दूसरे में आठ उपकरण तथा तृतीय बाक्स में सोलह उपकरण रखे जाते है। संपूर्ण परीक्षण में एक घंटे से अधिक समय लगता है। यह परीक्षण बच्चों से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के बालकों के लिये उपयोगी है।
2. **मिनीसोटा स्थानगत संबंधी परीक्षण :–** इसमें चार बोर्ड है जिनमें से प्रत्येक में 58 विभिन्न आकृतियों वाले टुकड़े होते है इसमें परीक्षार्थी टुकड़ों को बोर्ड के सही स्थान पर रखता है जिससे उसकी गति एवं परिशुद्धता का मापन किया जाता है। इसका प्रशासन एक एक करके किया जाता है तथा इसके करने में लगभग 40–50 मिनट का समय लगता है। यह प्रौढ़ तथा विद्यार्थी दोनों के लिए उपयुक्त है। इसकी रचना भी 1930 में हुई है।
3. **संशोधित मिनीसोटा पेपर फार्म बोर्ड परीक्षण :–** इस परीक्षण का संशोधन सन 1948 में मितेसोटा विश्वविद्यालय में हुआ। इसमें 64 ज्यामितीय समस्याएं है जिनका फलांकन हाथ एवं मशीन दोनों के द्वारा सम्भव होता है।
4. **यान्त्रिक समयबोध परीक्षण :–** 1941 में बिनरे ने इस परीक्षण का निर्माण किया जिसमें यान्त्रिक समस्याओं को पिच के रूप में प्रस्तुत किया जाता ह। इस परीक्षण का मुख्य उद्देश्य बालक की शारीरिक तथा यांत्रिक समस्याओं को समझना है।
5. **यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षण :–** यह परीक्षण यंत्रों के उपयोग के प्रति अभिक्षमता का मापन करने हेतु निर्मित किया गया है; जिससे यांत्रिक क्षमता योग्यता के क्षेत्र में इसके माध्यम से

सफलता एवं असफलता का पूर्वकथन किया जा सके। ये परीक्षण सामान्यतः दो प्रकार के होते है।

1. **क्रियात्मक परीक्षणः–** इसमें व्यक्ति को उसकी क्रियाओं एवं सफलता के अनुसार अंक प्रदान किये जाते है।
2. **शाब्दिक परीक्षण :–** इसमें व्यक्ति से लिखित रूप में समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने को कहा जाता है। इसकी रचना 1950 में हुई।

लिपिक अभिक्षमता परीक्षण :–

1. **थर्स्टन प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षण :–** सन् 1938 में थर्स्टन ने कारक विश्लेषण के आधार पर इस परीक्षण की रचना की जो हाईस्कूल एवं कॉलेज विद्यार्थियों हेतु उपयुक्त है। इसमें सात प्रकार की योग्यता है– 1. स्थानगत योग्यता, 2. प्रतिबोधक योग्यता, 3. संख्यात्मक योग्यता, 4. शाब्दिक योग्यता, 5. शब्द प्रवाह योग्यता, 6. स्मृति योग्यता, तथा 7. वर्क योग्यता के मापन हेतु विभिन्न परीक्षणों का निर्माण किया गया। सन् 1941 में शिकागों संशोधन तैयार किया। इसकी ही एक प्रतिरूप एस.आर.ए. प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षण है जिसके प्रशासन में 40–50 मिनट लगते है। यह परीक्षण 5 कारकों का मापन करता है।
2. **मिनीसोटा लिपिक अभिक्षमता परीक्षण :–** इस परीक्षण की रचना 1946 में हुई। इस परीक्षण में दो उप परीक्षण– 1. संख्या तुलना, 2. नाम तुलना निहित है।
    1. प्रथम उप परीक्षण ने व्यक्ति के सम्मुख 12 अंक तक के 209 संख्या युग्म प्रस्तुत किये जाते है तथा यदि ये युग्म सही होते है तो विषयी सही का चिन्ह लगा देता है अथवा गलत का चिन्ह अंकित करता है। इसी प्रकार–
    2. द्वितीय परीक्षण में कुछ शब्द या नाम दिये रहते है। यह परीक्षण प्रारंभ में तो केवल प्रौढ़ो के हेतु बनाया गया था किन्तु बाद में यह जूनियर तथा सीनियर हाईस्कूल के विद्यार्थियों पर भी प्रयुक्त होने लगा। इस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक 85–91 तथा वैधता गुणांक 50–60 ज्ञात किया गया।
3. **कार्पोरेशन तथा विभेद अभिक्षमता परीक्षण :–** इस परीक्षण का प्रकाशन सन 1947 में अमरीका के मनोवैज्ञानिक संघ में बैनेट, सीशोर तथा वेसमैन द्वारा किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य 8 से 12 वर्ष तक के बच्चों की विभिन्न योग्यताओं का मापन कर उन्हें शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करता है। इसका प्रयोग वयस्कों के लिये भी उपयोगी है। इसमें आठ उपपरीक्षण 1. शाब्दिक तर्क, 2. अंकात्मक योग्यता, 3. अमूर्त तर्क, 4. स्थानागत संबंध, 5. यांत्रिक तर्क, 6. लिपिक गति एवं शुद्धता, 7. भाषा प्रयोग स्पेलिंग तथा 8. भाषा प्रयोग वाक्य सम्मिलित है। प्रत्येक परीक्षण का प्रकाशन अलग अलग पुस्तिका में किया गया। जिससे इसकी उपयोगिता बढ़ सके।

इन परीक्षणों में पहला, सांतवा, आठवां परीक्षण शाब्दिक तथा अन्य पांच परीक्षण किसी न किसी रूप में अशाब्दिक परीक्षण है। इस माला के उप परीक्षणों की वैधता स्कूल तथा कॉलेज के परीक्षणों की उपलब्धि अंकों एवं व्यावसायिक सफलता के प्रतिकूल निर्धारित की गई है। इस परीक्षण माला का भाग अ कुछ आवश्यक परिवर्तनों एव संशोधित सहित भारत में डॉ. जे.एम. ओझा द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसका प्रयोग भारत में विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों निर्देशन केन्द्रों तथा शोधकर्ताओं द्वारा किया जाता है।

4. **सामान्य अभिक्षमता परीक्षण बैटरी** :– सन् 1947 मे संयुक्त राज्य अमेरिक की नियुक्ति सेवा में व्यक्तियों को रोजगार दिलाने हेतु इस बैटरी का उपयोग किया। इस परीक्षण माला का माकीकरण 17 से 39 वर्ष की आयु के 3156 व्यक्तियों पर किया गया। इसमें प्राप्त मूल प्राप्तांकों को प्रतिमान प्राप्तांकों में परिवर्तित कर लिया जाता है। इसमें व उप परीक्षण – 1. सामान्य तर्क योग्यता, 2. शाब्दिक अभिक्षमता, 3. संख्यात्मक अभिक्षमता, 4. स्थानगत अभिक्षमता, 5. आकृति प्रत्यक्षीकरण, 6. लिपिक निपुणता, 7. क्रियात्मक सामंजस्य 8. अंगुली निपुणता, 9. हस्तक्षय निपुणता निहित है जो विभिन्न कारकों का मापन करते है।
5. **सामान्य लिपिक परीक्षण** :– इस परीक्षण का प्रकाशन मनोवैज्ञानिक कार्पोरेशन द्वारा सन 1950 में किया गया। इसमें 9 उपपरीक्षण निहित है जो विभिन्न समस्याओं– गणित समस्या, शब्द विन्यास, पढ़ने की योग्यता, शब्दों का अर्थ, भाषा प्रयोग आदि का मापन करते है। संपूर्ण परीक्षण करने के लिए 50 मिनट लगते है। पुनर्परीक्षण विधि द्वारा इस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक 94 है।
6. **फ्लैनगन अभिक्षमता वर्गीकरण** :– 9 से 12वीं कक्षा तक में पढ़ने वाले बच्चों के व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने तथा कर्मचारियों के चयन हेतु इस परीक्षण का प्रयोग उपयुक्त है। इसमें 21 व्यवसायों के प्रति अभिक्षमता का मापन किया जाता है। फलांको के आधार पर विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों में व्यक्ति की सफलता का पूर्वकथन किया जाता है इसके प्रशासन में लगभग 7 घंटे का समय लगता है। इसके विभिन्न उपपरीक्षणों के मध्य 50 से 60 तक सहसंबंध ज्ञान किया गया है।

विशिष्ट क्षेत्रों में अभिक्षमता परीक्षण :–

इन परीक्षणों में मुख्यतः वे परीक्षण सम्मिलित है जो शिक्षा एवं व्यवसाय के विशिष्ट क्षेत्रों जैसे संगीत, कला, चिकित्सा, कानून, इंजीनियरिंग, विज्ञान आदि का मापन करते है। इन परीक्षणों के माध्यम से व्यक्ति में निहित विशिष्ट योग्यताओं के संबंध में ज्ञान होता है। विभिन्न क्षेत्रों के मापन वाले अभिक्षमता परीक्षणों को निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है।

संगीत :-

1. सीशोर संगीत योग्यता परीक्षण।

2. ड्रेक संगीत अभिक्षमता परीक्षण।

3. अलफियर संगीत उपलब्धि परीक्षण।

कला :—

1. ग्रेव डिजाइन निर्णय परीक्षण।

2. मायर कला निर्णय परीक्षण।

3. नोवर कला योग्यता परीक्षण।

4. होर्न कला अभिक्षमता रूचि।

चिकित्सा :—

1. मेडिकल कॉलेज दाखिला परीक्षण।

कानून :—

1. कानून कॉलेज दाखिला परीक्षण।

अध्यापन :—

1. राष्ट्रीय शिक्षक परीक्षाएं।

विज्ञान तथा तकनीकी :—

1. स्टैंडर्ड विज्ञान अभिक्षमता परीक्षण। .

2. इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण।

3. मिनेसोटा इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण।

अभिक्षमता परीक्षणों के व्यवहारिक उपयोग :—

अभिक्षमता परीक्षणों के विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहारिक उपयोग होते है, जैसे मेडिकल कॉलेज, इंजीनियर कॉलेज, कानून, अध्यापन, संगीत, कला, विज्ञान तकनीकी क्षेत्रों में मापन में स्कूल कॉलेज क बच्चों को व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने, कर्मचारियों, लिपिकों के चयन के लिये इनका उपयोग किया जाता है।

इकाई का सारांश :—

अभिक्षमता से आशय व्यक्ति की उस तत्परता अथवा रूझान से है जो किसी पेशे या कार्य में भावी सफलता पाने हेतु आवश्यक होती है।

अभिक्षमता मापन का मुख्य उद्देश्य बालक की छिपी हुई एवं अप्रत्यक्ष योग्यताओं को पहचान कर उसे उचित पर्यावरण प्रदान करना है। बिंघम ने अभिक्षमता के महत्व को निम्नानुसार वर्णित किया हैं –

1. व्यक्ति की अभिक्षमता वर्तमान गुणों का वह समुच्य है जो उसकी भविष्य की क्षमताओं की ओर इंगित करता है।
2. यह व्यक्ति की जन्मजात योग्यता ही नहीं होती बल्कि किसी कार्य को करने में उसकी प्रवीणता के भाव को भी व्यक्त करती है।
3. यह किसी वस्तु का नाम न होकर अमूर्त संज्ञा है। चूँकि यह व्यक्ति का अंग समझी जाती है इसलिए यह व्यक्ति के गुण या उसकी विशेषता की ओर संकेत करती है।
4. वर्तमान वस्तुस्थिति होने पर भी अभिक्षमता का निर्देश भविष्य की ओर होता है यह क्षमताओं की प्रतीत होती है।
5. अभिक्षमता का रूचि योग्यता एवं संतुष्टि से घनिष्ठ संबंध होता है।

परीक्षण दो प्रकार का होता है 1. एक कारक 2. बहुकारक

पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. विशिष्ट क्षेत्रों के अभिक्षमता परीक्षण लिखिए?

प्रश्न 2. अभिक्षमता की परिभाषा लिखिए?

प्रश्न 3. अभिक्षमता परीक्षण के प्रकार लिखिए।

प्रश्न 4. अभिक्षमता का महत्व क्या है?

प्रश्न 5. अभिक्षमता परीक्षणों के व्यांवहारिक उपयोग क्या है?

– – – –

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई – 9 सृजनात्मकता

विषयांश–

9.1 सृजनात्मकता का अर्थ व परिभाषा।
9.2 सृजनात्मक बालक की पहचान।
9.3 शिक्षा की सृजनात्मकता की उपयोगिता।
9.4 सृजनात्मकता के परीक्षण।

प्रिय छात्राध्यापक

प्रस्तुत इकाई में हम सृजनात्मकता का अर्थ व परिभाषा, बालक की पहचान, शिक्षा में सृजनात्मकता की उपयोगिता, सृजनात्मकता मापने के परीक्षणों का अध्ययन करेंगे।

9.1 अर्थ एवं परिभाषा :–

सृजनात्मक शब्द अंग्रेजी के Creativity (क्रियेटिविटी) से बना है। इस शब्द के समानान्तर विधायकता, उत्पादन, रचनात्मकता डिस्कवरी आदि का प्रयोग होता है। फादर कामिल बुल्के ने क्रियेटिव शब्द के समानान्तर, सृजनात्मक, रचनात्मक सृजनशीलता शब्द बताये। डॉ. रघुवीर ने इसका अर्थ सृजन, उत्पन्न करना, सृजित करना बताया है।

सृजन वह अवधारणा है जिसमें उपलब्ध साधनों से नवीन या अनजानी वस्तु विचार या धारणा को जन्म दिया जाता है। सृजनात्मक से अभिप्राय है रचना संबंधी की योग्यता, नवीन उत्पाद की रचना। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सृजनात्मक मौलिकता वास्तव में किसी भी प्रकार की क्रिया में घटित होती है।"

सृजनात्मकता ज्ञान, सूचना तथा कौशल के क्षेत्र में पाई जाती है। नवीन तथ्यों सिद्धांतों का प्रतिपादन, सूचना ग्रहण करने तथा कराने की नवीन प्रणालियों तथा नवीन वस्तु विचार की प्रस्तुति सृजनात्मकता के अन्तर्गत आती है।

सृजनात्मकता की परिभाषाएं निम्नलिखित हैः–

1. क्रो व क्रो – सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।
2. जेम्स ड्रेवर – सृजनात्मकता मुख्यतः नवीन रचना या उत्पादन में होती है।
3. स्टेन – जब किसी कार्य का परिणाम नवीन हो जो किसी समय में समूह द्वारा उपयोगी मान्य हो, वह कार्य सृजनात्मकता कहलाता है।

इन परिभाषाओं के आधार पर सृजनात्मकता की विशेषताएं इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है।

1. सृजनात्मकता मौलिक या नवीन हो।
2. सृजनात्मकता कार्य उपयोगी हो।
3. सृजनात्मकता कार्य को समान रूप से मान्यता मिलनी चाहिए।
4. सृजनात्मकता कार्य में दो या अधिक वस्तुओं, तथ्यों आदि के संयोग से नवीनता का सृजन होना चाहिए।
5. सृजनात्मक कार्य द्वारा व्यक्ति की प्रतिभा का विकास होना आवश्यक है।

प्रो. सुरेश भटनागर के अनुसार– "यद्यपि सृजनात्मकता कलाकारों के जीवन में अधिक व्यापक रूप से पायी जाती है। लेख, चित्रकार, कवि, विद्वान, अभिनेता आदि में सृजनशीलता विद्यमान रहती है। यदि वातावरण इस युग के विकास के अनुकूल हो तो व्यक्ति की क्षमता का मौलिक विकास होता है। भारत में छात्रों में निहित सृजनशीलता का विकास न होने से हजारो–लाखों प्रतिभाएं अविकसित रह जाती है। इससे राष्ट्र को हानि होती है।

9.2 सृजनात्मक बालक की पहचान :–

गिलफोर्ड ने सृजनात्मकता के तत्व इस प्रकार बताये हैः–

1. तत्कालिक स्थिति से परे जाने की योग्यता।
2. समस्या की पुर्नव्याख्या।
3. सामंजस्य।
4. मापन योग्य व्यवहार
5. मौलिकता एवं नवीनता
6. साहस
7. सामाजिक स्वीकृति
8. प्रवीणता

सृजनात्मकता की पहचान करना शिक्षक के लिये अत्यंत आवश्यक है। सृजनात्मकता बालकों की पहचान इस प्रकार की जा सकती है।

1. मौलिकता।
2. स्वतंत्रत निर्णय क्षमता।

3. परिहास प्रियता।
4. उत्सुकता।
5. संवेदनशीलता।
6. स्वतंत्रता।

उपरोक्त गुणों से बालक में सृजनात्मकता उत्पन्न होती है।

9.3 शिक्षा में सृजनात्मकता की उपयोगिता :-

बालकों में सृजनात्मकता का विकास करना, व्यक्ति तथा समाज, दोनों के हित में है। सृजनात्मकता बालकों में निहित विशिष्ट गुण है। इस गुण का विकास किया जाना आवश्यक शिक्षक को इस बात से परिचित होना चाहिए कि सृजनशील बालक स्वतंत्र निर्णय, शक्ति वाले होते है, अपनी बात पर दृढ़ होते है, वे जटिल समस्याओं के समाधान में रूचि लेते है, वे उच्च स्तर की प्रतिक्रिया करते है।

सृजनात्मकता एक ऐसा विचार है, जिसके माध्यम से बालकों में निहित संभावनाओं को विकसित किया जाता है। क्रो एण्ड क्रो के अनुसार जैसे–जैसे बालक में प्रतिबोधता एवं संबोधता का विकास हो जाता है। वह अपने वातावरण में परिवर्तन करना चाहता है जबकि प्रौढ़ व्यक्ति परिस्थितिनुगत यथार्थ होता है। छोटा बालक अत्यधिक कल्पनाशील होता है। वह अपने खिलौनो को अलग ले जाता है और उनको दूसरे रूप में रखता है। यहां सृजनात्मकता का प्रदर्शन होता है।

सृजनात्मकता एक स्वाभाविक सार्वभौमिक मानवीय शक्ति है। इस शक्ति का प्रयोग शिक्षा के माध्यम से यदि बालकों को प्रोत्साहित करने में किया जावे तो वह साहसिक चिंतन और क्रियाशीलता द्वारा मुख्य धारा से हटकर नये अनुभव प्राप्त करेगा तथा वर्तमान का संबंध भविष्य से जोड़ने की योग्यता विकसित करेगा।

शिक्षा में उपयोगिता :-

1. **सृजनात्मक शिक्षा :-** कोई भी मुक्त अभिव्यक्ति हो बालक भाषा दृश्यकला, संगीत, वैज्ञानिक कार्य अथवा गव्यात्मकता के कारण व्यक्त करता है। तथा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। इससे उसमें स्पष्टता आती है तथा अभिव्यक्ति हेतु इसमें संवेगात्मक गहनता आती है, जो उसके शैक्षिक विकास में सहायक होती है।
2. **सृजनात्मक मूल्यों का विकास :-** पाठ्यक्रम में दी गई नई–नई विधाओं को समझने में सृजनात्मक मूल्य उसकी मदद करतेहै। जिसके आधार पर पाठ्यक्रम की सामग्री एवं निदेशात्मक विधियों का चिंतन होता है जिससे छात्रों की आत्माभिव्यक्ति विकसित करने में मदद मिलती है।
3. **सृजनात्मक विचार :-** सृजनात्मक से सृजनात्मक विचार विकसित होते है जिनकी अभिव्यक्ति मौलिक तथा तार्किक मौखिक व लिखित रूप से व्यक्त होती है।

सृजनात्मकता से सभी क्षेत्रों में नये–नये प्रयोग एवं संकलन व्यवस्थापन, वर्गीकरण एवं सामंजस्य करने की योग्यता देखने में मिलती है, जो नये–नये अनुसंधान करने की दिशा देती है।

शिक्षा वह व्यापक क्षेत्र है, जहां छात्रों में सृजनात्मक शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास व्यक्ति तथा समाज दोनों के हित में करने के लिये ज्ञान के विकास तथा परिस्थितियों की अनुकूलता द्वारा सृजनात्मकता को बल मिलता है।

9.4 सृजनात्मकता के परीक्षण :–

सृजनात्मकता की पहचान के लिये गिलफोर्ड ने अनेक परीक्षणों का निर्माण किया है। ये परीक्षण– निरंतरता, लोचनीयता, मौलिकता तथा विस्तार का मापन करते है। प्रमुख परीक्षण इस प्रकार है:–

1. **चित्रपूर्ति परीक्षण** :– चित्रपूर्ति परीक्षण में अपूर्ण चित्रों को पूरा करना पड़ता है।
2. **वृत्त परीक्षण** :– इस परीक्षण में वृत्त में चित्र बनाये जाते है।
3. **प्रोडक्ट इम्प्रूवमेंट टास्क** :– चूने के खिलौनो द्वारा नूतन विचारों को लेखबद्ध करके सृजनात्मकता पर बल दिया जाता है।
4. **टीन के डिब्बे** :– खाली डिब्बों से नवीन वस्तुओं का सृजन कराया जाता है।

इकाई सारांश–

सृजन वह अवधारणा है जिसमें उपलब्ध साधनों से नवीन या अनजानी वस्तु, विचार या धारणा को जन्म दिया जाता है। सृजनात्मकता से अभिप्राय है रचना सम्बन्धी योग्यता, नवीन उत्पाद की रचना।

क्रो एंड क्रो के अनुसार 'सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।

गिलफोर्ड ने सृजनात्मक के तत्व इस प्रकार बताये हैं –

1. सामंजस्य
2. साहस
3. अन्यों के विचारों में परिवर्तन
4. तात्कालिक स्थिति से परे जाने की योग्यता
5. समस्या की व्याख्या अपने ढंग से करने की क्षमता
6. प्रवीणता

बालकों में सृजनात्मकता का विकास करना, व्यक्ति तथा समाज, दोनों के हित में हैं। शिक्षक को चाहिये कि बालकों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिये उपाय करे।

पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. सृजनात्मकता को परिभाषित कीजिए ?

प्रश्न 2. सृजनात्मक बालक की क्या पहचान है?

प्रश्न 3. शिक्षा में सृजनात्मकता की क्या उपयोगिता है?

प्रश्न 4. सृजनात्मकता परीक्षण के नाम लिखए (कोई–2)।

— — — —

इकाई– 10

विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई – 10 विशिष्ट बालकों का मनोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा

विषयांश

अ) विशिष्ट बालकों का मनोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा
10.1 प्रतिभाशाली बालक
10.2 पिछड़े बालक
10.3 निःशक्त बालक
10.4 समस्यात्मक बालक
10.5 बाल अपराध – कारण एवं प्रकार
ब) निर्देशन एवं परामर्श
10.6 अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं महत्व
10.7 विशिष्ट बालकों हेतु निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता एवं महत्व
10.8 शैक्षिक निर्देशन की उपयोगिता

प्रिय छात्राध्यापक!

पूर्व पाठ में आपने सृजनात्मकता के बारे में पढ़ा, आशा है आप सभी तक विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं की समझ आपकी बन चुकी होगी। इस अध्ययन में विभिन्न प्रकार के बालकों एवं उनकी शिक्षा के स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त होने के साथ ही विषयांश में निर्देशन एवं परामर्श के बारे में जानकारी प्रदान की जा रही है।

(अ) विशिष्ट बालकों का मनोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा–

10.1 प्रतिभाशाली बालक का अर्थ :–

वे बालक जो प्रत्येक क्षेत्र मे औसत बालक से अधिक तीव्र, बुद्धिमान, शारीरिक स्फूर्ति वाले एवं जीवन मे अधिक सफलता पाने वाले होते हैं, प्रतिभाशाली बालक के नाम से पुकारे जाते हैं।

प्रेम पसरीचा के अनुसार– प्रतिभावान बालक वह है जो सामान्य बुद्धि की दृष्टि से श्रेष्ठ प्रतीत हो एवं उच्च कोटी की विशेषताएं रखता है।

प्रतिभाशाली बालक की विशेषताएं :–

स्किनर एवं हैरीमैन के अनुसार– प्रतिभाशाली बालक में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती है–

1. विशाल शब्दकोष।
2. मानसिक प्रक्रिया की तीव्रता।
3. दैनिक कार्यों में विभिन्नता।
4. सामान्य ज्ञान की श्रेष्ठता।
5. सामान्य अध्ययन में रूचि।
6. अध्ययन में अद्वितीय सफलता।
7. अमूर्त विषयों में रूचि।
8. आश्चर्यजनक अर्न्तदृष्टि।
9. मन्द बुद्धि और सामान्य बालकों से अरूचि।
10. पाठ्य विषयों में अत्यधिक रूचि या अरूचि।
11. विद्यालय के कार्यो के प्रति बहुधा उदासीनता।
12. बुद्धि परीक्षाओं में उच्च बुद्धि लब्धि (130 + से 170 + तक)

बिटी के अनुसार– प्रतिभाशाली बालक खेल पसंद करते है। 50 प्रतिशत मित्र बनाने की इच्छा रखते हैं, 80 प्रतिशत धैर्यवान होते हैं, दूसरों का सम्मान करते हैं, 96 प्रतिशत अनुशासन प्रिय होते हैं।

प्रतिभाशाली बालक की शिक्षा :–

प्रतिभाशाली बालक को किस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए? इसका उत्तर देते हुए हैविगहर्स्ट ने अपनी पुस्तक में लिखा है– "प्रतिभाशाली बालकों के लिए शिक्षा का सफल कार्यक्रम वही हो सकता है, जिसका उद्देश्य उनकी विभिन्न योग्यताओं का विकास करता हो।" इस कथन के अनुसार प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा का कार्यक्रम इस प्रकार होना चाहिए।

1. सामान्य रूप से कक्षोन्नति।
2. विशेष व विस्तृत पाठ्यक्रम।
3. शिक्षक का व्यक्तिगत ध्यान।
4. संस्कृति की शिक्षा।
5. सामान्य बालकों के साथ शिक्षा।

6. विशेष अध्ययन की सुविधाएं
7. पाठ्यक्रम सहभागी क्रियाओं का आयोजन।
8. सामाजिक अनुभवों के अवसर।
9. नेतृत्व का प्रशिक्षण।
10. व्यक्तित्व का पूर्ण विकास।

10.2 पिछड़े बालक :–

जो बालक कक्षा का औसत कार्य नहीं कर पाता है और कक्षा के औसत छात्रों से पीछे रहता है उसे पिछड़ा बालक कहते हैं।

पिछड़े बालक का मन्दबुद्धि होना आवश्यक नहीं है। पिछड़ेपन के अनेक कारण है जिनमें बन्दबुद्धि होना एक है। यदि प्रतिभाशाली बालक की शैक्षिक योग्यता अपनी आयु के छात्रों से कम है तो उस भी पृिछड़ा बालक कहा जाता है। पिछडे बालक में कुद विद्वावनों कि विचार निम्नलिखित हैं–

1) **हिज मैजेस्ट्री** – कार्यालय के प्रकाशन पिछडें बालकों की शिक्षा में कहा गया है–"पिछडे बालक वे हैं,जो उस गति से आगे बढ़ने में असमर्थ होते है जिस गति से उनकी आयु अधिकांश साथी आगे बढ़ रहे हैं।"

2) **सिरिल बर्ट** – "पिछड़ा बालक वह है जो अपने विद्यालय जीवन के मध्य में अर्थात लगभग$10^{1/2}$ वर्ष की आयु में अपनी कक्षा से नीचे की कक्षा के उस कार्य को न रक सके जो उसकी आयु के बालकों के लिए सामान्य कार्य है।"

पिछड़े बालक की विशेषताएं :–

कुप्पूस्वामी के अनुसार– "पिछड़े बालक में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती है :–

1. सीखने की धीमी गति।
2. जीवन में निराशा का अनुभव।
3. समाज विरोधी कार्यो की प्रवृत्ति।
4. व्यवहार संबंधी समस्याओं की अभिव्यक्ति।
5. जन्मजात योग्यताओं की तुलना में कम शैक्षिक उपलब्धि।
6. सामान्य विद्यालय के पाठ्यक्रम से लाभ उठाने में असमर्थता।
7. सामान्य शिक्षण विधियों द्वारा शिक्षा ग्रहण करने में विफलता।
8. मन्दबुद्धि सामान्य बुद्धि या अति श्रेष्ठ बुद्धि का प्रमाण।
9. मानसिक रूप से अस्वस्थ्य और असमायोजिकत व्यवहार।
10. बुद्धि परीक्षाओं में निम्न बुद्धि लब्धि (90 से 110 तक)।

11. विद्यालय कार्य में सामान्य बालकों के समान प्रगति करने की अयोग्यता।

12. अपनी और उसस नीचे की कक्षा का कार्य करने में असमर्थता।?

पिछड़ेपन या शैक्षिक मन्दता के कारण :–

कुप्पूस्वामी के शब्दा में– "शैक्षिक पिछड़ापन अनेक कारणों का परिणाम है। अधिगम मे मन्दता उत्पन्न करन के लिए अनेक कारक एक साथ मिल जाते हैं।" प्रमुख कारण निम्नांकित हैं –

1) सामान्य से कम शारीरिक विकास।

2) शारीरिक दोष।

3) शारीरिक रोग।

4) निम्न सामान्य बुद्धि।

5) परिवार की निर्धनता।

6) परिवार का बड़ा आकार।

7) परिवार के झगड़े।

8) माता–पिता की अशिक्षा।

9) माता–पिता की बुरी आदतें।

10) माता–पिता का दृष्टिकोण।

11) विद्यालय में अनुपस्थिति।

12) विद्यालयों का दोषपूर्ण संगठन व वातावरण।

13) वंशानुक्रम

14) विषयों की अनिवार्यता एवं कठिन पाठ्यक्रम

15) समुचित निर्देशन एवं परामर्श का अभाव

पिछड़े बालक की शिक्षा :–

स्टोन्स के अनुसार– "आजकल पिछड़ेपन के क्षेत्र में किया जाने वाला अधिकांश अनुसंधान यह सिद्ध करता है कि उचित ध्यान दिये जाने पर पिछड़े बालक, शिक्षा में प्रगति कर सकते है।"

पिछड़े बालकों की शिक्षा के प्रति उचित ध्यान देने का अभिप्राय है उनकी शिक्षा का उपयुक्त संगठन, हम इस संगठन के आधारभूत तत्वों को प्रस्तुत कर रहे हैं –

1. विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना।
2. विशिष्ट कक्षाओं की स्थापना।
3. विशिष्ट विद्यालयों का संगठन।
4. अच्छे शिक्षकों की नियुक्ति।
5. छोटे समूहों में शिक्षा।
6. विशेष पाठ्यक्रम का निर्माण।
7. अध्ययन के विषय।
8. हस्तशिल्पों की शिक्षा।
9. सांस्कृतिक विषयों की शिक्षा।
10. विशेष शिक्षण विधियों का प्रयोग।
    1) सरल और रोचक शिक्षण विधियां।
    2) शिक्षण की धीमी गति।
    3) शिक्षाण का बालकों के दैनिक जीवन और मूर्त वस्तुओं से संबंध।
    4) शिक्षण से विभिन्न उपकरणों का उदार प्रयोग।
    5) कम से कम भौतिक शिक्षण।
    6) पढ़ाये गए विषय की बार–बार पुनरावृत्ति।
    7) अर्जित ज्ञान को प्रयोग के अवसर।
    8) योजना पद्धति के आधार पर कार्य।
    9) भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आदि स्थानों का भ्रमण।
    10) स्टोन्स के अनुसार– "इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि एक बार में अधिक न पढ़ा दिया जाय।"

10.3 निःशक्त या विकलांग बालक :–

विशिष्ट बालकों की श्रेणी में एक मुख्य वर्ग अपंग बालकां या असमर्थ बालकों या विकलांग बालकों का भी है। अपंग बालकों से हमारा अभिप्राय उन बालकों से होता है जो साधारण या सामान्य बालकों से मानसिक, शारीरिक या संवेगात्मक दृष्टि से दोषपूर्ण होते हैं। अर्थात वह बालक जिसमें सामान्य बालकों की तुलना में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक कमी अथवा दोष हो, जिसके कारण उसकी उपलब्धियां अधूरी रह जाती है, विकलांग या अपंग या निशक्त बालक कहलाता है।

क्रो एवं क्रो के अनुसार– ऐसे बालक जिनमें ऐसा शारीरिक दोष होता है जो किसी भी रूप में उसे साधारण क्रियाओं में भाग लेन से रोकता है या उसे सीमित रखता है ऐसे बालक को हम विकलांग बालक कह सकते है।"

डी.जी. फोर्स क विचार है कि– "जब शारीरिक दोषों के कारण उत्पन्न कठिनाईयों से बालक को सामाजजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है तब उससे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक दोषों में वृद्धि होती है।

निशक्त या विकलांग बालकों को निम्नलिखित वर्गो में बाटा जा सकता है :–

1. **शारीरिक रूप से विकलांग बालक :–** शारीरिक रूप से विकलांग बालक वे होते है जिसमें कोई शारीरिक त्रुटि होती है। वह त्रुटि उनके काम काज में किसी न किसी प्रकार बाधा डालती है। यह त्रुटि अधिक भी हो सकती है और कम भी। शारीरिक रूप से विकलांग बालक भी कई प्रकार के होते हैं।
    - अपंग बालक।
    - संपूर्ण और अर्द्धअंग।
    - पूर्ण बहरे और अपूर्ण बहरे।
    - हकलाने वाले या दोषपूर्ण वाणि वाले।
    - निर्बल बालक।
2. **मानसिक रूप से विकलांग बालक :–** इस प्रकार के बालकों में मूर्ख निम्नबुद्धि वाले या मन्द गति से सीखने वाले बालकों की गणना होती है। इन बालकों का वर्गीकरण बालकों की बुद्धि लब्धि के आधार पर किया जाता है।
3. **संवेगात्मक और सामाजिक रूप से विकलांग बालक :–** इन श्रेणी में बाल अपराधी या कदाचारी बालकों की गिनती होती है अर्थात वे बालक ज़ो संवेगात्मक और सामाजिक रूप से कुसमायोजित हो।

निःशक्त (विकलॉग) बालकों की शिक्षा :–

शिक्षा का विकास बालक की मानसिक परिपकवता पर निर्भर करता है। विभिन्न अध्ययनों में पाया गया है कि विकलांग बालक या तो सामान्य बुद्धि वाले होंगे अथवा असामान्य क्षमताओं वाले। यह भी पाया गया है कि जिन निशक्त बालकों ने अपनी हीनता की भावना पर विजय प्राप्त कर ली है वे संसार में बहुत ही प्रसिद्ध हुए है। अतः हर देश की शिक्षा की व्यवस्था ऐसी हो ताकि बालक अपनी समायोजन की शक्ति को स्थापित करके हीनता की भावना पर विजय प्राप्त कर सके। गहां पर हमें इनकी शिक्षा के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए–

1. विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना।
2. डॉक्टरों तथा विशेषज्ञो का उपयोग।
3. सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार।
4. सहायक सामग्री का निशुल्क प्रयोग।

5. व्यावसायिक पाठ्यक्रम।

6. पौष्टिक आहार।

निःशक्त बालकों की शैक्षिक समस्याएं तथा समाधान :-

निशक्त बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में निम्न समस्याएं आती हैं:-

1) अर्थ का प्रभाव।

2) पर्याप्त विद्यालायों का अभाव।

3) प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव।

4) उपकरणों का अभाव।

5) सरकार की उदासीनता।

10.4 समास्यात्मक बालक :-

समस्यात्मक बालक उस बालक को कहते है जिसके व्यवहार में कोई असामान्य बात होती है, जिसके कारण वह समस्या बन जाती है। जैसे- चोरी करना, झूठ बोलना आदि।

समस्यात्मक बालक का अर्थ स्पष्ट करते हुए वेलेटाइन ने लिखा है- "समस्यात्क बालकों-शब्द का प्रयोग साधारणतः उन बालकों का वर्णन करने के लिये किया जाता है जिनका व्यवहार या व्यक्तित्व किसी बात में गंभीर रूप से असामान्य होता है।"

समस्यात्मक बालकों की सूचि बहुत लंबी है। इनमें से कुछ मुख्य प्रकार के बालक हैं- चोरी करने वाले, झूठ बोलने वाले, क्रोध करने वाले, एकान्त पसंद करने वाले, मित्र बनानान पसंद करने वाले आक्रमणकारी व्यवहार करने वाले, विद्यालय से भाग जाने वाले, भयभीत रहने वाले, छोटे बालकों को तंग करने वाले, गृह कार्य न करने वाले, कक्षा में देर से आने वाले आदि। हम इनमें से प्रथम तीन का वर्णन कर रहे है।

1. चोरी करने वाला बालक -

चेरी के कारण-इसके अनेक कारण हैं -

1. अज्ञानता।
2. अन्य विधि से अपरिचित।
3. माता-पिता की अवहेलना।
4 साहस दिखाने की भावना।
5. उच्च स्थिति की इच्छा।
6. आत्म नियंत्रण का अभाव।
7. चोरी की लत।
8. आवश्यकताओं की आपूर्ति

2. झूठ बोलने वाला बालक –

झूठ बोलने के कारण– इसके अनेक कारण हैं –

13. मनोविनोद।
14. दुविधा।
15. मिथ्याभिमान।
16. प्रतिशोध।
17. स्वार्थ।
18. वफादारी।
19. भय।

3. क्रोध करने वाला बालक – साधारणतः क्रोध और आक्रमणकारी व्यवहार साथ होता है। क्रो एण्ड क्रो का कथन है– "क्रोध आक्रमणकारी व्यवहार द्वारा व्यक्त किया जाता है।" क्रुद्ध के आक्रमणकारी व्यवहार के कुछ मुख्य स्वरूप है– मारना, काटना, नोचना, चिल्लाना, खरोचना, तोड़ फोड़ करना, वस्तुओं को इधर–उधर फेकना, गाली देना व्यंग करना स्वयं अपने शरीर को किसी प्रकार की क्षति पहुंचाना इत्यादि।

क्रोध आने के कारण :– बालक को क्रोध आने के अनेक कारण हो सकते हैं।

1. बालक के किसी उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा पड़ना।
2. बालक में किसी के प्रति ईष्या होना।
3. बालक के खेल कार्य या इच्छा में विघ्न पड़ना।
4. बालक को किसी विशेष स्थान को जाने से रोकना।
5. बालक की किसी वस्तु का छिन लिया जाना।
6. बालक का किसी बात में निराश होना।
7. बालक का अस्वस्थ या रोगग्रस्त होना।
8. बालक का किसी कार्य को करने में असमर्थ होना।
9. बालक के कार्य व्यवहार आदि में निरंतर दोष निकाला जाना।
10. बालक पर अपने माता या पिता के क्रोधी स्वभाव का प्रभाव पड़ना।

10.5 बाल अपराध :–

सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए कुछ कानून होते हैं। इन कानूनों का पालन करना सबके लिए अनिवार्य होता है, चाहे वह वयस्क हो या बालक। यदि वयस्क उन कानूनों की अवहेलना करके समाज विरोधी कार्य करता है तो उसका कार्य अपराध कहा जाता है। यदि बालक या किशोर इस प्रकार का कार्य करता है तो उसका कार्य बाल अपराध या किशोर अपराध कहा जाता है।

जब बालक तथा किशोर समाज द्वारा निर्धारित नियमों तथा मानदण्डों का उल्लंघन इस सीमा तक करते है कि दूसरों के अधिकारों का उत्पीड़न होने लगता है, कष्ट पहुंचाता है तथा दूसरे लोग उसके व्यवहार को असहनीय मानने लगते हैं तो यह स्थिति बाल तथा किशोर अपराध कहलाती है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री इलियट एवं उनके सहयोगी मैरिल ने अपराध का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है– "अपराध एक कार्य है जो कानून द्वारा वर्जित है जिसके कर्ता को मृत्युदण्ड, जुर्माना जेल न्यायालय या सुधारगृह में बन्द जीवन व्यतीत करने के लिए दण्ड दिया जा सकता है।"

परिभाषाए :–

गुड– "कोई भी बालक जिसका व्यवहार, सामान्य, सामाजिक व्यवहार से इतना भिन्न हो जाए कि उसे समाज विरोधी कहा जा सके बाल अपराधी है।"

हीली– "वह बालक जो समाज द्वारा स्वीकृत आचरण का पालन नहीं करता, अपराधी कहा जाता है।"

मार्टिन न्यूमोर– "जो समाज विरोधी व्यवहार तथा सामाजिक विघटन उत्पन्न करता है वह बाल अपराधी कहा जा सकता है।"

बाल अपराध के कारण :–

मेडिन्स व जॉनसन का मत है– "सामाजिक समस्या के रूप में बाल अपराध में वृद्धि होती हुई जान पड़ती है। यह वृद्धि कुछ तो जनसंख्या की सामान्य वृद्धि के परिणामस्वरूप और कुछ जनसंख्या के अधिक भाग के ग्रामीण वातावरण के बजाय शहरी वातावरण में रहने के परिणामस्वरूप हो रही है।"

बाल अपराध के कारण निम्नलिखित हैं:–

1. आनुवांशिक कारण।
2. शारीरिक कारण।
3. मनोवैज्ञानिक कारण।
4. सामाजिक कारण।
5. पारिवारिक कारण।
6. विद्यालय संबंधी कारण।

7. संवाद वाहन के साधन।

8. सांस्कृतिक कारण।

1. आनुवांशिक कारण –

- अपराधी प्रवृत्ति।
- उत्पादक गुण सूत्र।
- शारीरिक रचना।

2. शारीरिक कारण –

- शारीरिक दोष।
- यौनांगो का तीव्र विकास।

3. मनोवैज्ञानिक कारण –

- निम्न सामान्य बुद्धि।
- मानसिक रोग।
- अवरूद्ध इच्छा।
- निराशा।
- ग्रन्थियां।
- संवेगात्मक असंतुलन।

4. सामाजिक कारण –

- साथी।
- अवकाश।
- नागरिक वातावरण।
- गन्दी बस्तियां।
- युद्ध।
- देश का विभाजन।

5. पारिवारिक कारण –

- भग्न परिवार।
- अनैतिक परिवार।
- परिवार की निर्धनता।
- परिवार का वातावरण।
- निरास्कृत बच्चे।
- बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार।
- पिता की अनुपस्थिति या मृत्यु।

6. विद्यालय संबंधी कारण –

- स्थिति।
- नियंत्रण का अभाव।
- खेल व मनोरंजन।
- परीक्षा प्रणाली।
- व्यक्तिगत स्कूल।

7. संवाद वाहन के वाहन –

- प्रहसन की पुस्तकें।
- सस्ते उपन्यास व पत्रिकाएं।
- चलचित्र।
- टेलीविजन।

8. सांस्कृतिक कारक –

आधुनिक युग में हमारे जीवन के समान हमारी संस्कृति भी कृत्रिम हो गई है। उसके अर्थ और महत्व का दोष हो गया है। वह वयस्कों किशोरों और बालकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असफल हो रही है। अतः बालक और किशोर इससे अपना संबंध विच्छेद करके समाज विरोधी कार्यों में संलग्न होते हुए दिखाई दे रहे हैं। मेडिन्स व जॉनसन के शब्दों में–बिटनिक आन्दोलन संबंध विच्छेद का अधिक पूर्ण रूप करता है।"

(ब) निर्देशन एवं परामर्श :–

निर्देशन का अर्थ मार्ग दिखाना सहायता करना जिससे व्यक्ति यह निश्चित कर सके कि वह अपने उद्देश्य को किस प्रकार से प्राप्त कर सकता है। निर्देशन एक प्रकार की व्यक्तिगत सहायता है जो किसी निपुण व्यक्ति के द्वारा दी जाती है। निर्देशन द्वारा व्यक्ति के अन्दर वह अर्न्तदृष्टि उत्पन्न की जाती है जिसमें वह स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ होता है। निर्देशन के द्वारा व्यक्ति को अपनी बुद्धि योग्यताओं, क्षमताओं, अभिरूचियों और व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त होता है जिससे वह अपने जीवन को अच्छा बनाता है। इस प्रकार निर्देशन व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य निश्चित करने में, उसके जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में तथा उसकी समस्याओं को सुलझाने में सहायता प्रदान करता है।

10.6 निर्देशन की परिभाषाएं :–

क्रो एण्ड क्रो– "निर्देशन वह सहायता है जो निपुण परामर्शदाताओं द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति को अपने जीवन के कार्यों को व्यवस्थित करने वाले दृष्टिकोण को विकसित करने, अपने निर्णयों का निश्चित करने तथा अपने उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिए दी जाती है।"

जोन्स– "निर्देशन वह व्यक्तिगत सहायता है जो व्यक्ति को आत्म निर्देशन के विकास में सहायता देती है। यह सहायता व्यक्ति विशेष को अपना व्यक्ति समूह को दी जाती है। इसमें व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इसमें व्यक्ति महत्वपूर्ण होता है समस्या नहीं।"

गुड– "निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों और उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित अर्न्तवैयक्तिक संबंधों की प्रक्रियाप है।"

हसबैंड– "निर्देशन व्यक्ति को उसके आगामी जीवन के लिए तैयार करने और समाज में समुचित स्थान प्राप्त करने के लिए सहायता देने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

निर्देशन के प्रकार :–

डब्ल्यु. एम. प्रोक्टर ने निर्देशन के निम्नलिखित छः प्रकार बताये हैं –

1. शैक्षिक निर्देशन।
2. व्यावसायिक निर्देशन।
3. समाजिक एवं नागरिक क्रियाओं में निर्देशन।
4. स्वास्थ्य एवं शारीरिक क्रियाओं में निर्देशन।
5. अवकाश काल के सदुपयोग के लिए निर्देशन।
6. चरित्र निर्माण के लिये निर्देशन।

मायर्स ने निर्देशन आठ प्रकार का बताया है –

1) शैक्षिक निर्देशन।
2) व्यावसायिक निर्देशन।
3) स्वास्थ्य संबंधी निर्देशन।
4) नागरिकता संबंधी निर्देशन।
5) नेतृत्व संबंधी निर्देशन।
6) सामाजिक तथा नैतिक निर्देशन।
7) मनोरंजन संबंधी निर्देशन।
8) समाज सेवा संबंधी निर्देशन।

मनोविज्ञान केन्द्र इलाहाबाद ने निम्नलिखित प्रकार के निर्देशन बताये है–

1. शैक्षिक निर्देशन।
2. व्यावसायिक निर्देशन।
3. व्यक्तिगत निर्देशन।

बलकों हेतु निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्व :–

वर्तमान युग में निरंतर होने वाली वैज्ञानिक प्रगति और यांत्रिक विकास बालकों के जीवन में भारी परिवर्तन किये हैं। आज बालक को अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आज बालकों के वैयक्तिक जीवन में सामाजिक जीवन में, शिक्षा के क्षेत्र में और व्यवसाय के क्षेत्र में अत्यधिक जटिलता और विशिष्टता आ गई है जिसके कारण निर्देशन की आवश्यकता बहुत अधिक हो गई है। निर्देशन के

महत्व के विषय में कहा गया है "सामाजिक मूल्यों के अवमूल्यन, जनसंख्या की वृद्धि मनोरंजन की विविधता शिक्षा के प्रति बदलते हुए दृष्टिकोण सामान्य शिक्षा के विकास तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बदलते हुए दृष्टिकोण के कारण, निर्देशन का महत्व और भी बड़ता जा रहा है। निर्देशन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से है :–

1. परिवार की स्थिति में परिवर्तन।
2. कार्यो एवं सेवाओं में विशेषीकरण की प्रवृत्ति।
3. सामाजिक जीवन में जटिलता।
4. अवकाश काल का सदुपयोग।
5. व्यक्तित्व के विकास में सहायक।
6. वैयक्तिक विभिन्ताओं का महत्व।
7. शिक्षा की जटिल प्रक्रिया।

इस प्रकार हम देखते है कि आज बालकों के निर्देशन की महती आवश्कता है। कोचर ने निर्देशन के विषय में लिखा है "व्यक्तियों के लिए समाज बहुत जटिल माता–पिता के लिये समायोजन की समस्या बहुत तीक्ष्ण और विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त विषयों के चयन की समस्या बहुत प्रबल हो गई है। इसलिए विद्यार्थियों के उचित समायोजन के लिये विद्यालय में निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता है।

1. **शैक्षिक निर्देशन विधार्थियों के लिए है :–** विद्यार्थियों के सामने अनेक ऐसी समस्याएं होती है जिनको वह स्वयं सुलझा पता है और न इन समस्याओं के शिक्षक या उसके माता–पिता सुलझा पाते है। इन समस्याओं को सुलझाने में सहायता देने के लिए निर्देशन सेवा के प्रतिशित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता पड़ती है।
2. **शैक्षिक निर्देशन शैक्षिक चुनावों के लिए है :–** विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के चुनाव करने पड़तें है। उनके सामने विद्यालय, पाठ्क्रम, पाठ्य विषय आदि के चुनाव की समस्या होती है। सबसे पहले उसमें यह चुनना होता है कि वे किस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करें? फिर उन्हें यह चुनना होता है कि वह कौन सा पाठ्यक्रम ले और किन विषयों को ले? विद्यर्थी स्वयं इन चुनाओं को नहीं कर सकते। इस विषय मे उनको शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता होती है।

10.7 विशिष्ट बालकों हेतु निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता एवं महत्व –

शिक्षा का उद्‌देश्य शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग बालकों को सामान्य बालकों के साथ बराबर के साझेदार के रूप में जोड़ने का होना चाहिये। उन्हें सामान्य वृद्धि और विकास के लिये तैयार करना और उन्हें जीवन का मुकाबला साहस और आत्मविश्वास के साथ करने के योग्य बनाना चाहिये।

अपंग बच्चों और माता पिता का मार्गदर्शन बहुत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के निर्देशन के लिये विशेषज्ञता पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता होती है। सामान्यतः लोग ऐसे विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं, जो बालक पर विपरीत मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि अध्यापक ऐसे बालकों के मन को समझने का प्रयांस करें और उन्हें उनकी अधिगम समस्याऐं दूर करने में मदद करें। इसके साथ साथ वह सामान्य बच्चों में, ऐसे बच्चों को उनके बराबर समझने के लिये सकारात्मक सोच मन में बैठाऐं।

10.8 शैक्षिक निर्देशन की उपयोगिता :–

1) पाठ्यविषयों के चयन में सहायता करता है।
2) व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है।
3) विद्यालयों मे विद्यार्थियों के समायोजन में उपयोगी।
4) विद्यार्थियों की अध्ययन संबंधी प्रेरणा को प्रोत्साहित करने में उपयोगी।
5) विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के संबंध में निर्णय करने में उपयोगी।
6) विशिष्ट बालकों की समस्या हल करने में उपयोगी।
7) विद्यालयों में अनुशासन स्थापित करने में उपयोगी।
8) अपव्यय एवं अवरोधन को दूर करने में सहायक।
9) बेकारी की समस्या के समाधान में सहायक।
10) पाठ्यक्रम शिक्षण विधि विद्यालय व्यवस्था आदि शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों को समझने और उनके अनुरूप कार्य करने में सहायक है।

इकाई सारांश –

प्रत्येक विद्यार्थी एक दूसरे से भिन्न होता है। विद्यार्थियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – सामान्य और विशिष्ट।

विशिष्ट विद्यार्थी उनको कहा जाता है जो अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, व्यक्तित्व तथा व्यवहार सम्बन्धी विशेषताओं की दृष्टि से अपनी आयु के अन्य औसत अथवा सामान्य बालकों से बहुत भिन्न होते है। ऐसे विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों की तुलना में अपनी विशिष्टता रखते हैं जिसके कारण इनकी गणना उच्च कोटि या निम्न कोटि के विद्यार्थियों में होती है। ऐसे विद्यार्थी मानसिक शारीरिक, संवेगात्मक और सामाजिक दृष्टि से या तो बहुत पिछड़े होते हैं या बहुत आगे निकल जाते हैं।

विशिष्ट विद्यार्थियों में पिछड़े बालक, समस्यात्मक मानसिक रूप से पिछड़े बालक, बाल अपराधी प्रतिभावान बालक आदि शामिल है।

प्रतिभाशाली बालक – वह बालक जो प्रत्येक क्षेत्र में औसत बालक से अधिक तीव्र, बुद्धिमान, शारीरिक स्फूर्ति वाले एवं जीवन में अधिक सफलता पाने वाले होते हैं, प्रतिभाशाली बालक होते है।

पिछ्डे बालक – जो बालक कक्षा का औसत कार्य नही कर पाता और कक्षा के औसत छात्रों से पीछे रहता है उसे पिछड़ा बालक कहते है।

विकलांग बालक – वह बालक जिसमे सामान्य बालको की तुलना में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक कमी अथवा दोष हो, निःशक्त बालक कहलाता है।

समस्यात्मक बालक –

जिन बालकों के व्यवहार में कोई असामान्य बात होती है जिसके कारण वह समस्या बन जाती है जैसे – चोरी करना, झूठ बोलना।

बाल अपराध – जब बालक तथा किशोर समाज द्वारा निर्धारित नियमों तथा मानदण्डों का उल्लंघन इस सीमा तक करते हैं कि दूसरों को कष्ट पहुंचता है, तो यह स्थिति बाल तथा किशोर अपराध कहलाती है।

निर्देशन एवं परामर्श – निर्देशन व्यक्ति को उसके जीवन में लक्ष्य निश्चित करने में, उसके जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में तथा उसकी समस्याओं को सुलझाने में सहायता प्रदान करता है।

पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. निर्देशन का अर्थ लिखिए?

प्रश्न 2. प्रतिभाशाली बालक की विशेषताएं लिखिए

प्रश्न 3. शैक्षिक पिछड़ेपन के कारण लिखिए?

प्रश्न 4. निशक्त बालकों की शिक्षा के लिये किये जाने चाहिए?

प्रश्न 5. शैक्षिक निर्देशन की उपयोगिता लिखिए।

— — — —

अभ्यास प्रश्न

छात्र का नाम –

छात्र का पंजीयन क्र. –

विषय –

कुल प्राप्तांक

मूल्यांकनकर्ता के हस्ताक्षर

नाम एवं पता –

नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिख कर आंतरिक मूल्यांकन के समय संबंधित संस्था में प्रस्तुत करें। इन्हें मण्डल कार्यालय में भेजने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न 1. मनोविज्ञान की परिभाषायें लिखिए। (कोई दो)

....

....

प्रश्न 2. मनोविज्ञान की शाखाएं लिखिए।

....

....

प्रश्न–3 सीखना या अधिगम से क्या अभिप्राय है?

....

....

प्रश्न–4 तत्परता का निमय क्या है?

....

....

प्रश्न–5 रूचि की एक परिभाषा बताइयें।

....

....

प्रश्न–6 रूचि के प्रकार बताइयें।

....

....

प्रश्न–7 अभिप्रेरणा के प्रकार बताइये?

....

....

प्रश्न–8 अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतों के नाम लिखियें?

....

....

प्रश्न–9 स्मृति के अवयवों का वर्णन कीजिए।

....

....

प्रश्न–10 स्मृति की उन्नति के उपायों का वर्णन कीजिए।

....

....

प्रश्न–11 व्यक्तित्व की व्याख्या कीजिए।

....

....

प्रश्न–12. संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं लिखिए।

....

....

प्रश्न–13. बुद्धि को परिभाषित कीजिए?

....

....

प्रश्न–14 बुद्धि कितने प्रकार की होती हैं?

....

....

प्रश्न–15 विशिष्ट क्षेत्रों के अभिक्षमता परीक्षण लिखिए?

....

....

प्रश्न–16 अभिक्षमता की परिभाषा लिखिए?

....

....

प्रश्न–17 सृजनात्मकता को परिभाषित कीजिए ?

....

....

प्रश्न–18. सृजनात्मक बालक की क्या पहचान है?

....

....

प्रश्न–19 निर्देशन का अर्थ लिखिए?

....

....

प्रश्न– 20 प्रतिभाशाली बालक की विशेषताएं लिखिए

....

....

इकाई–3 : पाठ्यचर्या में कार्य का स्थान

संरचना

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 पाठ्यचर्या में कार्य का स्थान

3.4 विकासात्मक कार्य

3.5 पाठ्यचर्या का निहितार्थ

3.5.1 पाठ्यचर्या का कार्यान्वयन

3.6 पाठ्यचर्या में मूल्यों का स्थान

3.6.1 मूल्य सम्बन्धी भारतीय अवधारणा

3.6.2 मूल्य सम्बन्धी पाश्चात्य अवधारणा

3.6.3 भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों में समन्वय

3.6.4 भारतीय संविधान में निहित भूलभूत मूल्य

3.7 पाठ्यचर्या के निर्धारक

3.8 पाठ्यचर्या मूल्यांकन

3.8.1 मूल्यांकन की विशेषताएं

3.8.2 पाठ्यचर्या मूल्यांकन के लाभ

3.8.3 पाठ्यचर्या मूल्यांकन की प्रकिया

3.8.4 पाठ्यचर्या मूल्यांकन प्रतिमान

3.9 सारांश

3.10 अभ्यास कार्य

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 परिचय

पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना है। शिक्षा के उद्देश्य जीवन और समाज के उद्देश्यों के अनुकूल होते हैं तथा इनका निर्धारण व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं एवं आकाक्षाओं की पूर्ति हेतु किया जाता है। चूकि विभिन्न समाजों की आवश्यकताएं एवं आकांक्षाएँ अलग–अलग होती है। अतः शिक्षा के उद्देश्य भी देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। इन उद्देश्यों के निर्धारण में व्यक्ति एवं समाज के मूल्यों, आदर्शों, विश्वासों, मान्यताओं एवं परम्पराओं की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विभिन्न शिक्षाविदों ने अपने जीवन के मूल्यों एवं आदर्शों के अनुसार शिक्षा के भिन्न–भिन्न उद्देश्य बतलाये हैं। इसके अतिरिक्त जिस देश या समाज में जैसा बातावरण रहता है, उसी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बन जाता है। इस प्रकार पाठ्यचर्या निर्माण में व्यक्ति और समाज के विश्वासों, परम्पराओं, जीवन मूल्यों एवं आदर्शों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत पाठ्यचर्या में कार्य का स्थान, वास्तविक जीवन में मूल्यों, पाठ्यचर्या में इनके निहितार्थ व क्रियान्वयन तथा पाठ्यचर्या मूल्यांकन के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- पाठ्यचर्या में कार्य के स्थान के बारे में समझ सकेंगे।
- पाठ्यचर्या में जीवन के वास्तविक मूल्यों को समझ सकेंगे।

- पाठ्यचर्या के निहितार्थ एवं क्रियान्वयन के बारे में समझ सकेंगे।
- पाठ्यचर्या के मनोवैज्ञानिक निर्धारकों को समझ सकेंगे।
- पाठ्यचर्या के मूल्यांकन के संबंध में समझ सकेंगे।
- पाठ्यचर्या का विभिन्न परिस्थितियों में मूल्यांकन कर सकेंगे।

3.3 पाठ्यचर्या में कार्य का स्थान

कार्य आधारित पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों क्रियाओं तथा कार्य को इस प्रकार व्यवास्थित तथा संगठित किया जाता है कि छात्र निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें। कोठारी आयोग (1966) ने अपने द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम में कार्यानुभव को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। कार्य–आधारित पाठ्यक्रम में केन्द्रित कार्य को शिक्षा का केन्द्रबिन्दु मानकर सभी विषयों तथा क्रियाओं की शिक्षा उसी केन्द्रित कार्य का आधार बनाकर दी जाती है। कार्य–आधारित पाठ्यक्रम छात्र को सैद्धान्तिक ज्ञान देनें के साथ ही व्यावहारिक तथा जीवनोपयोगी ज्ञान भी प्रदान करता है। समाज के साथ स्वस्थ समन्वय स्थापित करता है।

महात्मा गांधी बुनियादी शिक्षा की वकालत करते हैं जिसमें प्रत्येक बुनियादी विद्यालय में एक केन्द्रीय क्रिया की व्यवस्था करनी पड़ती थी तथा बालक उस क्रिया को करते हुए अपनी सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करता था। वर्तमान समय में विद्यालय का कार्यक्षेत्र समयबद्ध अध्ययन–अध्यापन के सीमित घेरे से निकलकर व्यापक रूप धारण कर चुका हैं तथा इसमें निरन्तर बृद्धि होती जा रही है। विद्यालयों में आयोजित की जाने वाली सभी प्रवृत्तियॉ पाठ्यक्रम को उसके अन्तर्गत सम्पादित किये जाने वाले कार्यों के आधार पर सीमांकित करने का प्रयास किया है। माइकल पेलार्डी के अनुसार– "सामान्यतया पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों के उन समस्त अनुभवों के रूप में परिभाषित किया जाता है जिनका दायित्व विद्यालय अपने ऊपर लेता है। इस रूप में पाठ्यक्रम का तात्पर्य प्रायः उन क्रमिक कार्यों से हैं जो इन अनुभव से पूर्व , इनके होने के साथ–साथ तथा इन अनुभवों के बाद आयोजित किये जाते है।

इन कार्यों का निम्नांकित आठ वर्गों में समाहित किया जा सकता है–

1) लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण
2) बालकों के संज्ञानात्मक विकास का पोषण
3) बालकों के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य का संवर्धन
4) अधिगम हेतु व्यवस्था
5) शैक्षणिक स्रोतों का उपयोग
6) छात्रों का व्यक्तिगत बोध तथा उसके अनुरूप शिक्षण व्यवस्था
7) समस्त कार्यक्रमों एवं बालकों के कार्यों का मूल्यांकन
8) नवीन प्रवृत्तियों का साहचर्य

इन उपर्युक्त कार्यों को सम्पादित करने के लिए विद्यालयों में जिन प्रवृत्तियों का आयोजन किया जाता है उनके प्रकार एवं संख्या में बहुत विविधता पाई जाती हैं, किन्तु व्यापक दृष्टि कोण के आधार पर उन्हें तीन प्रमुख वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है –

(अ) शैक्षिक क्रियाएँ

(ब) पाठ्य सहगामी क्रियाएँ

(स) रूचि कार्य

(अ) शैक्षिक क्रियाएँ (Educational Activities or Curricular Activities)

विद्यालयों के समस्त क्रियाकलापो के साथ–साथ शिक्षा के क्षेत्र की सभी क्रियाएँ जहाँ भी जिस रूप में, जब भी आयोजित की जाती है शैक्षिक ही होती हैं, किन्तु सामान्य रूप है, जिनका नियोजन कुछ निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु निर्धारित पाठ्य–विषयों के अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से किया जाता है। वर्तमान में व्यावहारिक ज्ञान अर्थात प्रायोगिक कार्यों का पाठ्यक्रम में समावेश होने तथा नवीन शिक्षण विधियों द्वारा बालकों की सक्रियता पर अधिक बल देने के फलस्वरूप प्रयोग शालाएँ , कार्य शालाएँ तथा पुस्तकालय आदि भी शैक्षिक क्रियाओं के कार्य–स्थल बन गए हैं। इसके साथ ही अब अधिगम–अनुभवों अर्थात विद्यार्थियों द्वारा वास्तविक परिस्थितियों में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करने पर भी अधिक बल दिया जाने लगा है।

(ब) पाठ्यसहगामी क्रियाएं (Co-Curricular Activities)

प्रारंभ में पाठ्यचर्या का क्षेत्र विभिन्न विषयों की पाठ्य–वस्तुओं के अध्ययन–अध्यापन तक ही सीमित माना जाता था। विद्यालयों में आयोजित होने वाली अन्य गतिविधियों जैसे–खेलकूद, व्यायाम, सहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्रिया कलाप आदि को पाठ्येत्तर क्रियाएँ (Extra Curricular Activities) माना जाता था, किन्तु पाठ्यक्रम के व्यापक दृष्टिकोंण के आधार पर अब इन गतिविधियों को पाठ्यसहगामी क्रियाओं के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में विद्यालयों में शिक्षकों के मार्गदर्शन एवं निर्देशन में विभिन्न प्रकार की पाठ्य–सहगामी क्रियाएं आयोजित की जाती हैं जिन्हें कुछ प्रगुख वर्गो में निम्नांकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है–

I) शारीरिक विकास संबंधी क्रियाएं – पी.टी0, व्यायाम, खेलकूद, पर्वतारोहण, तैराकी, नौकायन, स्वास्थ्य परीक्षण, पौष्टिक आहार (मध्यान्ह भोजन) आदि।

II) साहित्यिक क्रियाएँ– भाषण कला, वाद–विवाद, विचार गोष्ठी, कार्य–गोष्ठी, कविता पाठ, अन्त्याक्षरी, परिचर्चा, आशुभाषण, पत्रिका प्रकाशन, लेखन, समाचार एवं पत्रबाचन आदि।

III) सांस्कृतिक–क्रियाएँ– एकल अभिनय, मूलअभिनय, नाटक, प्रहसन, नृत्य एवं अन्य मनोरंजनात्मक क्रियाएं।

IV) सृजनात्मक क्रियाएँ – चित्रकारी, पच्चीकारी, दस्तकारी, बागवानी, उपयोगी वस्तुओं का निर्माण एवं नवीनता की खोज आदि।

V) सामाजिक क्रियाएँ – सफाई अभियान, साक्षरता का प्रसार, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारियों का प्रचार, सामाजिक कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों को दूर करने के लिये प्रचार अभियान आदि।

VI) राष्ट्रीय क्रियाकलाप– राष्ट्रीय दिवसों एवं जयन्तियों को मनाना एन.सी.सी.एन.एस.एस. स्काउटिंग, रेडकास आदि।

(स) रूचिकार्य (Hobbies)

इसके अन्तर्गत वे गतिविधियाँ आती हैं जिनका आयोजन विद्यालयों द्वारा बच्चों की रूचियों का समुचित विकास करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस प्रकार की गतिविधियों में विभिन्न वस्तुओं जैसे– टिकट, सिक्के, पत्थर आदि का सग्रह करना, चित्र एवं कार्टून बनाना, फोटोग्राफी करना, बेकार पड़ी चीजों से उपयोगी वस्तुएं बनाना, विभिन्न प्रकार के चित्रों के एलबम तैयार करना आदि।

यद्यपि विद्यालयों में आयोजित की जाने वाली गतिविधियों को उपर्युक्त तीन वर्गों में विभाजित करने का प्रयास किया गया है किन्तु सही मायने में न तो इन गतिविधियों की पूर्ण सूची तैयार की जा सकती है और न ही उन्हें निश्चित रूप से किसी एक वर्ग में रखा ही जा सकता है। जैसे–वाद–विवाद, परिचर्चा, पैनल चर्चा आदि गतिविधियों को पाठ्य–सहगामी गतिविधियों के अंतर्गत साहित्यिक गतिविधियों में सम्मिलित किया जाता है किन्तु यदि इन्ही गतिविधियों को निर्धारित पाठ्यक्रम के किसी प्रकरण के अध्ययन–अध्यापन की विधि के रूप में प्रयोग किया जाता है तब यही शैक्षिक गतिविधियाँ हो जाती हैं। इसी प्रकार व्यवस्था–परिवर्तन के फलस्वरूप भी इनमें परिवर्तन होता रहता है। जैसे–खेल, पाठ्य–सहगामी गतिविधियों के अंतर्गत आता है, किन्तु कुछ राज्यों ने इसे अब एक अनिवार्य विषय के

रूप में पाठ्यक्रम में एक निश्चित स्थान प्रदान किया है, अतः अब यह शैक्षिक गतिविधियों में सम्मिलित हो गया है।

3.3.1 विकासात्मक कार्य

विकासात्मक कार्यों से तात्पर्य है मनुष्य को ऐसे कार्य समाज में स्वस्थ एवं सन्तोषजनक अभिवृद्धि के लिए सीखना ही चाहिए। यदि व्यक्ति सफलतापूर्वक उलपब्धि प्राप्त करता है तब उसे प्रसन्नता होती है और यह प्रसन्नता आगे के कार्यों में सफलता के लिये सहायक होती है। बालक के विद्यालयीन जीवन के विकासात्मक कार्यों का वर्णन हेविग हर्स्ट(1956)ने निम्नानुसार किया है।

- **प्रारम्भिक बाल्यावस्था (Early Childhood)**
  (अ) सामाजिक एवं भौतिक वास्तविकता के वर्णन के लिए भाषा सीखना एवं संकल्पनाओं का निर्माण करना।
  (ब)पढ़ने के लिए तैयार होना।
  (स)सही एवं गलत में अन्तर करना सीखना।
- **मध्य बाल्यावस्था (Middle Childhood)**
  (अ)शारीरिक कौशलों को सीखना।
  (ब)अपने आपके बारे में पूर्ण अभिवृत्ति का निर्माण करना।
  (स)हमउम्रों के साथ रहना।
  (द)स्त्री–पुरूष की उचित भूमिका सीखना।
  (ई)दैनिक जीवन की संकल्पनाएें विकसित करना।
  (क)नैतिकता एवं मूल्यों का विकास करना।
  (ख)व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अर्जित करना।
  (ग)सामाजिक समूहों एवं संस्थाओं के प्रति प्रजातान्त्रिक अभिवृत्ति विकसित करना।

- **किशोरावस्था (Adolescence)**
  (अ)हम उम्र साथियों से नये एवं अधिक परिपक्व सम्बन्ध स्थापित करना।
  (ब)पुरूष एव महिला की सामाजिक भूमिका अर्जित करना।
  (स)अपने शरीर संगठन को स्वीकार करना एवं शरीर का प्रभावी रूप से उपयोग करना।
  (द)पालकों एवं अन्य वयस्कों की संवेगात्मक स्वतन्त्रता प्राप्त करना।
  (क)विवाह एवं पारिवारिक जीवन के लिए तैयार करना।
  (ख)आर्थिक वृत्ति के लिए तैयार करना।
  (ग)व्यवहारों के मार्गदर्शन के लिए मूल्यों एवं नैतिक पध्दति अर्जित करना।
  (घ)सामाजिक रूप से उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करना।

3.4 ज्ञान का एकीकरण (Integrating Knowledge)

गेस्टाल्टवाद अर्थात पूर्णाकारवाद सिध्दान्त के अनुसार मस्तिष्क एक इकाई है। मस्तिष्क ज्ञान को छोटे–छोटे टुकड़ो में प्राप्त नहीं करता, बल्कि उसे पूर्णरूप में ग्रहण करता है। वहीं वस्तु या विचार मस्तिष्क में स्थिर होता है जो पूर्ण अर्थ देता है।

चूंकि ज्ञान एक इकाई है तथा शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को ज्ञान की एकता से परिचित कराना है। शिक्षा का यह उद्देश्य पाठ्य–विषयों को अलग–अलग रूप में पढ़ाने से पूरा नहीं हो सकता अर्थात यह कार्य तभी पूर्ण हो सकता है जब विषयों को एक–दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाये। इसके लिए विषयों का एकीकरण आवश्यक है। एकीकरण की अवधारणा के अन्तर्गत विभिन्न पाठ्य–विषयों को इस प्रकार परस्पर,सम्बन्धित किया जाता है कि उनके बीच किसी प्रकार का भेद न रहे। इस प्रकार ज्ञान को समग्र रूप में प्रस्तुत करना ही ज्ञान का एकीकरण है।

एकीकरण की अवधारणा से एकीकृत पाठ्यक्रम का उदय हुआ है। अमेरिकी विद्यालयों में एकीकृत पाठ्यक्रम का विकास हुआ है। एकीकरण के सिध्दान्त के अनुसार कोई विचार अथवा किया तभी

प्रभावशाली एवं उपयोगी होती है जब उसके विभिन्न भागों एवं पक्षों में एकता होती है। इसीलिए एकीकृत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के ज्ञान को अलग–अलग खण्डो में प्रस्तुत करके सब विषयों को मिलाकर ज्ञान की एक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

हेन्डरसन के अनुसार,"एकीकृत पाठ्यक्रम वह पाठ्यक्रम है जिसमें विषयों के बीच कोई अवरोध,रूकावट अथवा दीवार नहीं होती है।

हेन्डासन के अनुसार, इस प्रकार का पाठ्यक्रम उन अनुभवों को देता है जिन्हें एकीकरण की प्रकिया के लिए सुविधाजनक समझा जाता है तथा जिससे बालक उस पाठ्य–वस्तु को सीखते है जो अनुभवों को समझने में एवं उनके पुनर्निर्माण में सहायक होती है। इस प्रकार का अनुभव–प्रधान पाठ्यक्रम विषय को अलग–अलग रखने तथा उनको शीर्षकों में बॉटने का अन्त करता है एवं ऐसे विषयों को स्थान देता है जो बालक की रूचि के केन्द्र होते हैं।

कौशल (Skill)–प्रसिध्द दार्शनिक ब्राउडी के अनुसार पाठ्यकम ऐसा होना चाहिए जिससे अपेक्षित आदतों का समुचित विकास हो सके। इसके लिए उसने चार प्रकार के कौशलों के विकास को आवश्यक माना है–

- व्यवसायिक कौशल(Vocational skill)
- प्रतिकात्मक कौशल(Symbolic skill)
- अध्ययन की आदतें(Study habits)
- तर्क कौशल(Reazoning skill)

इन कौशलों के विकास हेतु माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में प्राकृतिक अध्ययन,सामाजिक अध्ययन तथा व्यावसायिक निर्देशन की व्यवस्था होनी चाहिए।

यथार्थवादी प्राकृतिक नियमों में विश्वास करते हैं। इनका मानना है कि समाज तथा सामाजिक संस्थाओं को एक समान किया तथा व्यवहार करना चाहिए। अतः विद्यालय के छात्रों को यथार्थ जगत से परिचित कराने में अहम भूमिका है। इस भूमिका को मिलाने के लिए पाठ्यक्रम में मुख्य रूप से भौतिक तथा सामाजिक विज्ञानों का समावेश हो जो प्राकृतिक प्रकटनों की व्याख्या कर सकें। इसके साथ ही पाठ्यक्रम में बालक के वास्तविक जीवन की तैयारी हेंतु उपयोगी विषयों का भी समावेश किया जाना चाहिए उस दृष्टि से यथार्थवादियों ने प्रकृति विज्ञान तथा उद्योग या व्यवसाय को पाठ्यकम में प्रमुखता प्रदान की है तथा भाषा,साहित्य कला, संगीत,इतिहास,भूगोल आदि विषयों को गौण स्थान प्रदान किया है। उन्होंने विस्तृत पाठ्यकम में लगभग तीस विषयों को सम्मिलित किया है तथा उसमें से अपनी रूचि के अनुसार विषयों का चयन करने की बच्चों को स्वातंत्रता प्रदान की है। मातृभाषा तथा उद्योग को अनिवार्य विषय घोषित किया है। कमेनियस ने इन दो विषयों की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि व्यवसाय जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक है तथा मातृभाषा समस्त विकास की आधारशिला है।

3.5 पाठ्यचर्या का निहितार्थ (तात्पर्य) (Implication of Curriculum)

पाठ्यचर्या शब्द अंग्रेजी भाषा के 'करीक्यूलम'(Curriculum)शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। 'करीक्यूलम' शब्द लैटिन भाषा से अंग्रेजी में लिया गया है तथा यह लैटिन शब्द 'कुर्रेर' से बना है। 'कुर्रेर' का अर्थ है 'दौड़ का मैदान', दूसरे शब्दों में 'करीक्यूलम' वह कम है जिसे व्यक्ति को अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए पार करना होता है। अतः पाठ्यचर्या वह साधन है, जिसके द्वारा शिक्षा व जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। यह अध्ययन का निश्चित एवं तर्कपूर्ण कम है, जिसके माध्यम से शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा वह नवीन ज्ञान एवं अनुभव को ग्रहण करता है। शिक्षा के अर्थ के बारे में दो धारणाएँ हैं– पहला प्रचलित अथवा संकुचित अर्थ और दूसरा वास्तविक या व्यापक अर्थ। संकुचित अर्थ में शिक्षा केवल स्कूली शिक्षा या पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित होती है, तदनुसार संकुचित अर्थ में पाठ्यचर्या भी केवल विभिन्न विषयों के पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित है, परन्तु विस्तृत अर्थ में पाठ्यचर्या के अन्तर्गत वह सभी अनुभव आ जाते हैं जिसे एक नई पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ियों से प्राप्त करती है। साथ ही विद्यालय में रहते हुए शिक्षक के संरक्षण में विद्यार्थी जो भी संकियाएँ करता है, वह सभी पाठ्यचर्या के अन्तर्गत आती हैं तथा इसके अतिरिक्त विभिन्न पाठ्यचर्या सहगामी कियाएँ भी पाठ्यचर्या का अंग होती है। अतः वर्तमान समय में 'पाठ्यचर्या' से तात्पर्य उसके विस्तृत स्वरूप से ही है।

पाठ्यचर्या के अर्थ को और अच्छी तरह समझने के लिए हमें शिक्षा के विकास पर भी एक दृष्टि डालनी आवश्यक है। आदिकाल में शिक्षा का स्वरूप पूर्णतया अनौपचारिक होता था अर्थात् शिक्षा किसी विधि एवं क्रम में बंधी हुई नहीं थी। उस समय बालकों की शिक्षा उनके परिवार एवं समाज की जीवनचर्या के मध्य चलती रहती थी तथा बालक उसमें भागीदार बनकर प्रत्यक्ष अनुभव एवं निरीक्षण के माध्यम से तथा अपने बड़ो एवं पूर्वजों के अनुभव सुनकर शिक्षा प्राप्त करता था, किन्तु सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव के ज्ञानराशि के संचित कोष में निरन्तर वृध्दि होती गई तथा मनुष्य के जीवन में जटिलताएँ एवं विविधताएँ आती गई। परिणामस्वरूप व्यक्ति के पास समय और साधन का अभाव होने लगा तथा उसकी शिक्षा अपूर्ण रहने लगी। अतः प्रत्येक विकासशील समाज ने अपने बालकों को समुचित शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से इसे विधिवत् एवं क्रमबध्द बनाने के प्रयास प्रारम्भ किये। विद्यालयों का उद्भव तथा उनकी स्थापना इन्हीं प्रयासों का परिणाम है। इस प्रकार समाज जो उपयोगी महत्वपूर्ण ज्ञान अपने बालकों को समुचित ढ़ंग से नहीं दे पा रहा था उसने उसकी जिम्मेदारी अनुभवी विद्वानों को सौंप दी। इन विद्यालयों द्वारा बालकों को जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा समुचित ढ़ंग से शिक्षा प्रदान करने हेतु जो ज्ञानराशि निश्चित एवं निर्धारित की गई तथा की जाती है उसे ही 'पाठ्यचर्या' का नाम दिया गया है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि पाठ्यचर्या अध्ययन का ही एक क्रम है, जिसके अनुसार चलकर विद्यार्थी अपना विकास करता है। अतः यदि शिक्षा की तुलना दौड़ से की जाए तो पाठ्यचर्या उस दौड़ के मैदान के समान है, जिसे पार करके दौड़ने वाले अपने निश्चित लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं।

3.5.1 पाठ्यचर्या का कार्यान्वयन (Implimentation of Curriculum)

किसी भी पाठ्यक्रम का महत्व उसके कार्यन्वयन से होता है। कार्यन्वयन के द्वारा ही लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। विशय (1976) ने बताया कि कार्यान्वयन के लिये पुनर्रचना एवं प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है। इसके लिये व्यक्तिगत आदतों, व्यवहार के तरीकों, कार्यक्रम के महत्व सीखने के स्थान एवं वर्तमान पाठ्यक्रम के पुनगठन एवं समायोजन की आवश्यकता होती है। सामाजिक वैज्ञानिकों ने वर्षों पूर्व पूर्ण कार्यान्वयन की जो परिभाषा दी थी, वह आज भी उपयोगी है जो निम्नवत हैं–

– स्वीकृति

– अधिक समय कार्य करना

– किसी विशिष्ट पद का एक विचार अथवा चलन

– व्यक्तियों, समूहों अथवा अन्य अनुकूलित इकाइयों से संबंधित

– सम्प्रेषण

– समाजिक संरचना का और

– मूल्यों अथवा संस्कृति की दी गई पद्धति लेथबुड (1982) ने कार्यान्वयन को एक प्रक्रिया माना हैं, जिसमें वर्तमान पद्धति एवं नवाचारों अथवा परिवर्तन अभिकर्ताओं द्वारा सुझायी गई पद्धति में अंतरों को कम किया जाता है। कार्यान्वयन व्यवहारात्मक परिवर्तन को प्रभावित करने का प्रयास करता है। यह सोपानों (Steps) में होता है तथा शक्तियों को किसी नवाचर के प्रति तैयार करने में समय लगता है।

आर्न्सिटन एवं हान्किन्स (1988) ने कार्यान्वयन को पाठ्यक्रम चक्र का एक अलग घटक माना है। इसमें कई व्यक्तियों के व्यापक कार्य शामिल हैं। यह एक अन्तक्रियात्मक प्रक्रिया है जिसमें पाठ्यक्रम निर्माता एवं उपयोग कर्त्ता के मध्य अन्तक्रिया होती है। कार्यान्वयन के द्वारा व्यक्तियों के ज्ञान,कार्य एवं अभिव्यक्तियों में परिवर्तन का प्रयास किया जाता है।

व्यवहारिक परिस्थितियों में पाठ्यक्रम के लागू होने की सीमा का पता क्रियान्वयन की अवस्था में लगाया जाता है कि व्यवहारिक रूप से क्रियान्वयन के समय क्या–क्या समस्याएं आयेगी जैसे–

–समय,अंक व क्रिया की दृष्टि से जो सापेक्षित भार प्रदान किया गया है वह उपयुक्त है या नहीं।

–शिक्षक की दक्षता–शिक्षण,शिक्षण विधियों के अनुसार पाठ्यक्रम को क्रियान्वित कर रहा है या नहीं।

–विषय वस्तु को व्यवस्थित,अनुक्रमित व रूचि कर बनाना भी शिक्षक पर निर्भर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाठ्यचर्या क्रियान्वयन शिक्षण व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण घटक है।

3.6 पाठ्यचर्या में मूल्यों का स्थान

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य को अपने समाज से जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह उसकी सामाजिक विरासत है तथा इसे ही विद्वानों ने संस्कृति की संज्ञा प्रदान की है। संस्कृति को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– भौतिक एवं अभौतिक।

- भौतिक संस्कृति का सम्बन्ध मूर्त वस्तुओं जैसे– मकान,कपड़ा,फर्नीचर,रेडियो,साइकिल,बर्तन,मूर्तियॉ,पुस्तकें,मशीन एवं अन्य उपकरण आदि से है।
- अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत वे समस्त चीजें सम्मिलित की जाती हैं जिन्हें देखा या छुआ नहीं जा सकता है। धर्म,प्रथा,परम्परा,आदर्श,मूल्य,विश्वास,भाषा,जनरीतियॉ,साहित्य,विज्ञान,दर्शन आदि अभौतिक संस्कृति के अंग हैं।

मूल्य, मानव अस्तित्व में किसी महत्वपूर्ण चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुष्य जीवन–पर्यन्त सीखता रहता हैं,जिससे उसके अनुभवों मे निरन्तर वृध्दि होती रहती है।मनुष्य में सीखने के साथ–साथ जैसे–जैसे परिपक्वता आती हे वह ऐसे अनुभव भी प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ये निर्देशक जीवन को दिशा प्रदान करते हैं तथा इन्हें मूल्य कहा जा सकता है। ये अनुभवों के विकसित तथा परिपक्व होने के साथ– साथ विकसित तथा परिपक्व होते हैं।

3.6.1–मूल्य संबंधी भारतीय अवधारणा (Indian Conception of Values)

भारतीय मनीषियों ने मानव–मूल्यों की विवेचना मानव को ज्ञान एवं विवेक युक्त प्राणी मानते हुए की है। ज्ञानहीन मनुष्य पशु के सामान होता है। ज्ञान के प्रकाश में की गई क्रियाएं ही वास्तव में मानव क्रियाएं होती हैं तथा ज्ञान के प्रकाश में की गई इच्छा–तुष्टि या लक्ष्य–प्राप्ति को 'मूल्य' की संज्ञा प्रदान की गई है। पशु अपनी इच्छाओं की तृप्ति केवल मूल–प्रवृत्तियों(Instinets)से परिचालित होकर करते हैं तथा उनमें ज्ञान शून्यता होती है। अतः इन निम्न प्राणियों का लक्ष्य आत्म रक्षा एवं प्रजाति रक्षा तक ही सीमित होता है। मानवोचित लक्ष्य इससे भिन्न हैं। अतः मानवोचित जीवन लक्ष्यों को ही भारतीय मनीषियों ने 'मूल्य' की संज्ञा दी है तथा भारतीय जीवन मूल्यों के लिए 'पुरूषार्थ'(*What are desired by man*) शब्द का प्रयोग किया है। इनके द्वारा प्रतिपादित चार पुरूषार्थों के रूप में चार भारतीय मूल्य हैं– अर्थ,काम,धर्म और मोक्ष। इनमें से पहले दो मूल्यों को लौकिक(निम्नस्तर) तथा अन्तिम दो मूल्यों को आध्यात्मिक(उच्चतर) कहा जा सकता है। अर्थ और काम,जैविक या साधन मूल्य भी कहे जा सकते हैं जो सामान्य जीवन,आत्म रक्षा एवं प्रजाति रक्षा के लिए उपयुक्त हैं। भारतीय अवधारणा के अनुसार धर्म कुछ सनातन एवं शाश्वत नियमों का नाम है जो कि निरपेक्ष है तथा वैयक्तिकता से ऊपर है। धर्म सभी सामाजिक एवं नैतिक व्यवस्थाओं का आधार है। इसके दो पक्ष बतलाये गये हैं– एक वर्तमान भौतिक या सांसारिक जीवन तथा दूसरा इसके बाद का जीवन। प्रथम को 'अभ्युदय' तथा दूसरे को 'निःश्रेयस' कहा गया है। **"यतो अभ्यूदय निःश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः। " (वैशेषिक सूत्र 1–1–2)** जीवन के विभिन्न पक्षों की जड़ धर्म ही है। अतः जो धर्म का लक्ष्य है, वही शिक्षा,समाजशास्त्र, राजनीति एवं अर्थनीति का भी लक्ष्य है।

मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है तथा अन्य तीनों पुरूषार्थों(अर्थ,काम,धर्म) की पराकष्ठा है। यह परिपूर्णता(*Self-perfection*) की स्थिति है। यह वह अवस्था है जब सभी इच्छाऍ लुप्त हो जाती हैं, मनुष्य राग–द्वेष से मुक्त हो जाता है। यह जीव–मुक्ति की अवस्था ही मोक्ष है। उपनिषदों में इसे इसी संसार में सशरीर प्राप्य बतलाया गया है। अतः पाठ्यचर्या में इनका समावेश बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है।

3.6.2–मूल्य संबंधी पाश्चात्य अवधारणा*(Western Conception of Values)*

पाश्चात्य विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से 'मूल्य' को परिभाषित किया है, किन्तु इसकी सामान्य परिभाषा इस प्रकार की गई है–

"मल्य वह है, जिसका महत्व है, जिसके पाने के लिए व्यक्ति और समाज चेष्टा करते है, जिसके लिए वे जीवित रहते हैं तथा जिसके लिए वे बड़े से बड़ा त्याग कर सकते हैं।"

अर्बन के अनुसार,"मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की तुष्टि करे।" इन्होंने मूल्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

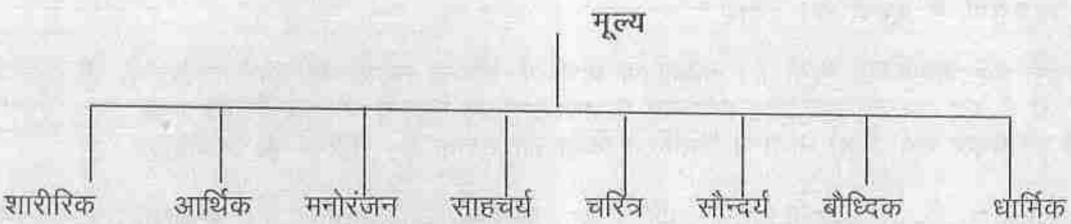

इनमें शारीरिक, आर्थिक एवं मनोरंजन मूल्यों को साधन(Instrumental Value),सौन्दर्य,बौध्दिक एवं धार्मिक मूल्यों को साध्य(Intrinsic value) तथा साहचर्य एवं चरित्र मूल्यों को साधन एवं साध्य दोनों प्रकार के मूल्यों के अन्तर्गत रखा गया है। साधन एवं साध्य मूल्यों को जैविक एवं अतिजैविक मूल्यों के रूप में बॉटा जा सकता है। अर्बन के अनुसार, जैविक मूल्य वैयक्तिक होते हैं तथा जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अतिजैविक मूल्य,उच्चतर कोटि के हाते हैं तथा इन्हें सामाजिक एवं आध्यात्मिक दो कोटियों में रखा जा सकता है।

आदर्शवादी दार्शनिकों के अनुसार मूल्य शाश्वत एवं निरपेक्ष(Absolute)होते हैं तथा देश, काल परिस्थिति आदि के कारण इनके स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता है। इन्होंने मूल्यों को 'ट्रुथ', 'गुडनेश' एवं 'ब्यूटी'(सत्यम्,शिवम,सुन्दरम) की संज्ञा प्रदान की है। ये तीनों मूल्य व्यक्ति की तीन आध्यात्मिक गतिविधियों–ज्ञानात्मक, कियात्मक एवं भावात्मक से सम्बन्धित हैं।

3.6.3 भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों में समन्वय

मूल्यों के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण में जो मूल अन्तर है वह सुख की अवधारणा के कारण है। भारतीय दार्शनिकों द्वारा की गई प्रेयस और श्रेयस् की चर्चा पाश्चात्य जगत् में देखने को नहीं मिलती है। भारतीय सुख को सदैव अच्छा एवं प्राप्तव्य नहीं मानते हैं। इनके अनुसार मनुष्य बुध्दि एवं विवेक युक्त प्राणी है, अतः ज्ञान युक्त पक्ष से सम्बन्धित धर्म और मोक्ष, दो ही प्रमुख मूल्य हैं जिन्हें आध्यात्मिक मूल्य कहा गया है। ये निरपेक्ष मूल्य है तथा आदर्शवादियों के सत्य,शिव एवं सुन्दर इनमें समाहित हैं। इन्हें ही अर्बन की शब्दावली में अति जैविक मूल्यों की संज्ञा प्रदान की गई है।

जगत् के अन्य प्राणियों से समानता के कारण मनुष्य के जैविक मूल्य भी हैं जिन्हें भारतीय मनीषियों ने अर्थ एवं काम की संज्ञा प्रदान की है। काम का मूल्य सभी प्राणियों में होता है तथा कुछ में अर्थ का मूल्य भी पाया जाता है। अतः मानव के लिए इन मूल्यों को निम्नतर तथा गौण माना गया है। पाश्चात्य दर्शन में इन्हें साधन मूल्य कहा गया है। इस प्रकार पाश्चात्य अवधारणा के तीनो जैविक मूल्य अर्थ एवं काम के अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं। अतः भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों में इन समानताओं के आधार पर समन्वय स्थापित किया जा सकता है। अतः पाठ्यचर्या में भारतीय एवं पा" चात्य मूल्यों का समन्वय करते हुए पाठ्यवस्तु में इसका समावेश किया जाना चाहिए।

3.6.4 भारतीय संविधान में निहित मूलभूत मूल्य

किसी भी समाज द्वारा निर्धारित आदर्शों को ग्रहण करने के लिए उन आदर्शों एवं मूल्यों के अनुरूप नागरिकों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करना होता हैं। व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन के लिए शिक्षा सर्वाधिक सशक्त माध्यम होती है। अतः समाज के आदर्शों एवं मूल्यों का शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है।

आधुनिक भारतीय समाज ने लोकतांत्रिक समाजवादी शासन व्यवस्था को अपनाया है। अतः इसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि देश के नागरिकों के व्यवहार में लोकतान्त्रिक मूल्यों का अधिक से अधिक समावेश हो तथा उनका व्यवहार लोकतन्त्र के अनुरूप परिवर्तित हो। लोकतन्त्र में शासन प्रणाली के साथ–साथ व्यक्तियों की जीवन–शैली में भी लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाने की आवश्यकता होती है। शिक्षा द्वारा ही इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न किया जा सकता है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यचर्या, शिक्षण–विधियों एवं विद्यालयीन वातावरण में लोकतांत्रिक मूल्यों–स्वतन्त्रता, समानता, सामाजिक न्याय, धर्म

निरपेक्षता एवं बन्धुत्व को समुचित महत्व प्रदान करना होगा जिससे सभ्य और सुशिक्षित समाज प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा कर सके।

वर्तमान भारतीय समाज की लोकतांत्रिक – समाजवादी व्यवस्था के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नवत होने चाहिए।

- लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास करना।
- लोकतंत्र को जीवन–शैली के रूप में अपनाना।
- मानवीय संसाधनों का विकास करना।
- भौतिक संसाधनों का विकास करना।
- श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।
- सामाजिक न्याय की भावना का विकास करना।
- समान शैक्षिक अवसरों को उपलब्ध कराना।
- निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करना।
- समान स्कूल प्रणाली को प्रोत्साहित करना।
- राष्ट्रीय चेतन को बढ़ावा देना।
- सर्वधर्म सदभाव की भावना का विकास करना।
- सामाजिक कुशलता में बृद्धि करना।
- अन्तराष्ट्रीय सदभाव का विकास करना।
- मानव के व्यक्तित्व एवं गुणों का विकास करना।
- अच्छी आदतों का निर्माण करना।
- सामाजिक गुणों – प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता, कर्तव्य परायणता, परस्परिक सद्भाव आदिका विकास करना।
- आत्मानुशासन की भावना का विकास करना।
- जन कल्याण की भावना का विकास करना।
- जीविकोपर्जन की क्षमता प्रदान करना।

लोकतंत्रीय आदर्शों एवं मूल्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यचर्या में उन विषयों को मुख्य स्थान दिया जाता है जिनके अध्ययन से बालकों में उत्तम मानोंवृत्तियों, अच्छे सामाजिक एवं नागरिक गुणों, आत्म अनुशासन एवं आत्म निर्भरता का विकास हो सके। इस प्रकार उपरोक्त शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान रखते हुए पाठ्यचर्या की संरचना की जानी चाहिए जिससे बालको में प्रारम्भिक स्तर से प्राजातांत्रिक गुणों का सुचित एवं संतुलित विकास हो सके तथा प्राजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा हो सके।

- **मूल्यों के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण(Psychological Views Regarding to Values)**

आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार लक्ष्य की प्राप्ति ही मूल्य है। मासलो(Maslow)मूल्य को एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता मानता है। मारगेनो के अनुसार मूल्य, मानवीय आवश्यकताओं के सन्तोष का मापन है। इसने मूल्यों को दो वर्गों में रखा है– तथ्यात्मक(Factual) एवं आदर्शात्मक(Normative)। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक अवधारणा,मनुष्य की आवश्यकताओं एवं उनकी पूर्ति तक ही अपने को सीमित रखती हुई लक्ष्य की पूर्ति को 'मूल्य' मानती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार लक्ष्य अलग–अलग हो सकते हैं।

- **मूल्य सम्बन्धी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण(Sociological Views of Values)**

'मूल्य' के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में बहुत अधिक समानता है। पारसन्स के अनुसार,'मूल्य' किसी भी समाज व्यवस्था के विभिन्न उपकमों में से किसी एक के चयन का मानदण्ड है। काने के अनुसार 'मूल्य' वे आदर्श, विश्वास एवं मानक होते हैं जिन्हें समाज या समाज का

अधिसंख्य भाग ग्रहण किये होता है। लूमिस एवं लुमिस के अनुसार,'मूल्य' मानव व्यवहार के वास्तविक निर्धारक होते हैं जो विभिन्न वैकल्पिक लक्ष्यों में से लक्ष्यों को चुनने में मानदण्ड के रूप में कार्य करते हैं।

इस प्रकार उर्पयुक्त समाजशास्त्रियों के कथनों के आधार पर 'मूल्य' की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है–

"मूल्य वे मानदण्ड हैं जो किसी समाज में उपलब्ध वैकल्पिक साधन एवं लक्ष्यों में से उपयुक्त साधन एवं लक्ष्य को चुनने में सहायता करते हैं तथा मानव व्यवहार का निर्धारण करते हैं।"

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार पाठ्यचर्या में मूल्यों को समाहित किया जाता है।

3.7 पाठ्यचर्या के निर्धारक

पाठ्यचर्या शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है । मनोविज्ञान के विकास में पाठ्यचर्या की रचना को कई प्रकार से प्रभावित किया है। अतः उन तत्वों के बारे जानना तथा उनका अध्ययन करना पाठ्यचर्या के आयोजकों के लिए अतिआवश्यक है जो पाठ्यचर्या को प्रभावित करते है। पाठ्यचर्या के इन निर्धारकों को जानने एवं पाठ्यचर्या के संबंध को स्पष्ट करने हेतु जॉनसन ने कुछ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना उपयोगी माना है। ये प्रश्न निम्नवत हैं–

- क्या विद्यार्थी का शारीरिक विकास पाठ्यचर्या को प्रभावित करता है ?
- क्या विद्यार्थी का मानसिक विकास पाठ्यचर्या को प्रभावित करता है ?
- क्या विद्यार्थी के शारीरिक, पारिवारिक विकास संबंधी या किसी अन्य प्रकार की व्यक्तिगत समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ पाठ्यचर्या को प्रभावित करती है ?
- क्या विद्यार्थी की अभिरूचियाँ पाठ्यचर्या को प्रभावित करती है ?
- क्या पाठ्यचर्या के नियोजन में विद्यार्थी के लिए पुरस्कार एवं दण्ड का कोई स्थान है तथा यदि है तो इसके सन्तुलन की क्या स्थति होनी चाहिए ?

इन उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर पाठ्यचर्या के मनोवैज्ञानिक निर्धारकों की विवेचना से स्पष्ट होगें। यद्यपि पाठ्यचर्या की पृष्ठभूमि में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सर्वत्र व्याप्त रहता है फिर भी इसके मुख्य निर्धारक निम्नालिखित मनोवैज्ञानिक तत्वों को माना जा सकता है–

1. परिपक्वता एवं विकास
2. व्यक्तिगत भिन्नता
3. अभिरूचि
4. अभिप्रेरणा
5. अधिगम प्रक्रिया एवं अधिगम का स्थानान्तरण
6. मानव प्रकृति एवं उसमें परिवर्तन

3.8–पाठ्यचर्या मूल्यांकन

पाठ्यक्रम संरचना का अन्तिम सोपान सम्पूर्ण प्रकिया का उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टिसे मूल्यांकन करना है। उद्देश्यों के निर्धारण एवं स्पष्ट कथन,अधिगम–अनुभवों एवं अन्तर्वस्तु के चयन तथा अन्तर्वस्तु के संग्रथन एवं संगठन के पश्चात पाठ्यकम को कार्यरूप दे दिया जाता है। पाठ्यकम को कार्यरूप देने के बाद यह भी जानना आवश्यक होता है कि उस पाठ्यकम से विद्यार्थियों में कितना अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन हुआ है और कितना नहीं हो सका है। इस कार्य को मूल्यांकन की संज्ञा दी जाती है।

पाठ्यकम के मूल्यांकन का तात्पर्य शैक्षिक प्रयासों के परिणामस्वरूप उत्पन्न व्यवहारगत परिवर्तनों की प्रकृति,दिशा तथा सीमा के प्रमाण का प्राप्त करना तथा उनको पाठ्यकम–प्रक्रिया के पक्षों में सुधार लाने के लिए मार्गदर्शक के रूप में प्रयुक्त करना है।

विद्यार्थियों के व्यक्तिगत अथवा वर्गगत व्यवहार परिवर्तन के साथ–साथ विद्यालय के उद्देश्यों तथा उन्हे प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त अधिगम–अनुभवों,अर्न्तवस्तु संगठन तथा शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में निर्णय लेना भी मूल्यांकन के अंतर्गत आता है।

मूल्यांकन के प्रमुख क्षेत्र निम्नवत है:–

- छात्रों मे व्यवहारगत परिवर्तन तथा इन व्यवहारों को प्रभावित करने के लिये उत्तरदायी कारक।
- मूल्यांकन कार्यक्रम का छात्र–अभिप्रेरण तथा अधिगम पर प्रभाव।
- पाठ्यक्रम प्रक्रिया के सभी पक्षों का मूल्यांकन।

3.7.1 मूल्यांकन की विशेषताएं

मूल्यांकन की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं--

- क्रमबध्दता (Orderliness)
- वस्तुनिष्ठता (Objectivesvity)
- विश्वसनीयता (Reliability)
- वैधता (Validity)
- व्यावहारिकता(Usability)
- व्यापकर्ता(Brodeness)
- शिक्षार्थी की सहभागिता(Participation)

3.6.2 पाठ्यचर्या मूल्यांकन के लाभ

पाठ्यक्रम के मूल्यांकन के प्रमख रूप से दो लाभ हैं–

1.इसके द्वारा प्रमुखरूप से विद्यार्थियों से अपेक्षित तथा उनमें हो चुके व्यवहारगत परिवर्तनों की तुलना हो जाती है। इसके अभाव में सही नहीं कहा जा सकता है कि उद्देश्यों की पूर्ति हुई है अथवा नहीं तथा यदि हुई है तो किस अंश अथवा सीमा तक। इससे यह भी पता चल जाता है कि ज्ञान, अववोध,कौशल,मूल्य,अभिवृत्ति आदि सम्बन्धी उद्देश्य कहॉ तक पूर्ण हो सके हैं।

2.पाठ्यक्रम की प्रकिया सतत् चलती रहती है। किसी वृत्त पर अंकितं बिन्दुओं के समान उसके कमिक सोपान एक–दूसरे के बाद आते चले जाते हैं। इस दृष्टि से मूल्यांकन भावी कार्य के लिये उपयोगी निर्देश देता है। मूल्यांकन के आधार पर ही यह निर्णय किया जा सकता है कि जो कुछ प्राप्त हो चुका है उसे कैसे आगे बढ़ाया जाये तथा जिसकी प्राप्ति नहीं हो सकी है उसके लिये किस तरह के परिवर्तन किये जायें। इस प्रकार कह सकते हैं कि पाठ्यचर्या मूल्यांकन का तात्पर्य शैक्षिक प्रयासों के परिणामस्वरूप उत्पन्न व्यवहारगत परिवर्तनों की प्रकृति, दिशा तथा सीमा के प्रमाण प्राप्त करना तथा इनको पाठ्यचर्या प्रकिया के पक्षों में सुधार लाने के मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत करना है।

3.8.2–पाठ्यचर्या मूल्यांकन की प्रकिया

पाठ्यक्रम विकास के विभिन्न सोपानों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम विकास की प्रकिया का स्वरूप वृत्ताकार है। मूल्यांकन वह पद है जिस पर एक चक्र पूर्ण होता है और दूसरा प्रारंभ हो जाता है। मूल्यांकन से जहां एक ओर निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के बारे में जानकारी प्राप्त हाती हैं वहीं दूसरी ओर उसमे संशोधन एवं परिवर्तन की आवश्यकता का भी अनुभव होता है। इस प्रकार मूल्यांकन के भावी उद्देश्यों के लिये दिशा–निर्देश प्राप्त होता है। अतः शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण पाठ्यक्रम–निर्माता एवं मूल्यांकन कर्ता दोनों का सामूहिक कार्य होना चाहिये। उद्देश्यों के निर्धारण में मूल्यांकन कार्य करने वालो की सहभागिता इसलिये भी आवश्यक है जिससे उसे इस बात का सम्यक ज्ञान हो कि उसे किन चीजों का मूल्यांकन करना है

मूल्यांकन कार्य केवल कौशल शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह अधिगम–अनुभवों एवं अन्तर्वस्तु के चयन से भी सम्बन्धित है। अधिगम–अनुभवों तथा अन्तर्वस्तु के चयन के लिये यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम–निर्माता को शिक्षार्थियों की क्षमताओं,अभिरूचियों,व्यक्तिगत भेदों,आवश्यकताओं आदि की जानकारी हो। मूल्यांकन से इन सबका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

अधिगम अनुभवों एवं अन्तर्वस्तु के चयन में मूल्यांकन दो प्रकार से योग प्रदान करता है–

1–यह चयन मे सहायक आवश्यक प्रदत्तों को उपलब्ध कराता है तथा

2–यह व्यक्ति अथवा वर्ग की अधिगम–तत्परता का बोध कराता है।

प्रायः कोई भी शैक्षिक अनुभव ऐसा नहीं है जिसके लिये कोई एक संगठनात्मक सिध्दांत पूर्णतया उपयुक्त होता हो तथा विभिन्न संगठनात्मक प्रतिमानों में केवल चयन की नहीं,बल्कि संग्रथन की भी आवश्यकता होती है। अतः इनकी उपयुक्तता ज्ञात करने के लिए मूल्यांकन कार्य से सहायता मिल पाती है। इस प्रकार मूल्यांकन प्रकिया पाठ्यकम–विकास के सभी पक्षों से सम्बन्धित रहती है।

पाठ्यकम की मूल्यांकन प्रकिया इसके विकास की सभी चरणों में सतत् रूप से चलती रहती है। इससे भावी कदम के लिये दिशा–निर्देश प्राप्त होता रहता है। पाठ्यकम–अनुसंधान के क्षेत्र में भी मूल्यांकन का बहुत महत्त्व है। विभिन्न शोधकत्ताओं द्वारा एक ही उद्देश्य या समस्या के लिये अलग–अलग उपागम अपनाय जाते हैं। किन्ही दो अथवा कई उपगमों के प्रभाव की तुलनात्मक स्थिति का ज्ञान परि कल्पनाओं का प्रीक्षण विभिन्न स्तरों पर विषयों के निर्धारण का प्रभाव आदि मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव हो सकता है। अतः कान बैक का यह कथन पूर्णतया सही है कि मूल्यांकन पाठ्यक्रम निर्माण की परिशिष्ट न होकर अनिवार्य अंग है।

पाठ्यकम चक की सम्प्रत्यात्मक रूपरेखा निम्नवत है–

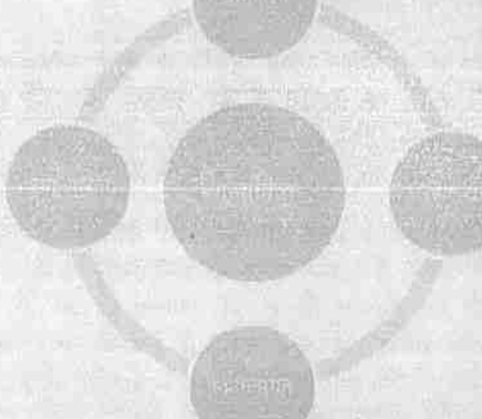

पाठयकमचक की सम्प्रत्यात्मक रूपरेखा

पाठ्यचर्या के सन्दर्भ में NCERT ने मूल्यांकन को एक ऐसी सतत् व व्यवस्थित प्रकिया बताया है जो देखती है कि–

1-निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक होती है।

2--.वक्षा में दिये गये अधिगम अनुभव कितने प्रभावशाली हैं।

3–शिक्षा के उद्देश्य कितने अच्छे ढ़ंग से प्राप्त हो रहे हैं।

स्पष्ट है कि शिक्षण उद्‌देश्यों की वांछनीयता को मूल्यांकन प्रक्रिया के अंतर्गत देखा जाता है। मूल्यांकन प्रक्रिया के तीन प्रमुख तत्त्व –शिक्षण, अधिगम एवं व्यवहार परिवर्तन परस्पर एक दूसरे से संबंधित एवं निर्भर रहते हैं।

पाठ्यकम मूल्यांकन प्रकिया निम्नलिखित दो स्तरो पर की जाती है–

1.सूक्ष्म स्तर पर मूल्यांकन प्रकिया(Evaluation process at micro level)

इसके अन्तर्गत पाठ्यचर्या के प्रत्येक विषय का मूल्यांकन दो प्रकार से किया जा सकता है
1.निर्णय एवं

2.प्रेक्षण द्वारा

निर्णय द्वारा मूल्यांकन तीन पदों में होता है– प्रथम शिक्षक द्वारा,दूसरा शिक्षार्थी द्वारा तथा तीसरा विषय विशेषज्ञ द्वारा। इन तीनों पदों के सारांश एवं सुझाव के आधार पर पाठ्यचर्या का पुर्न मूल्यांकन किया जाता है।

प्रेक्षण द्वारा पाठ्यचर्या मूल्यांकन के लिये एक समिति का गठन किया जाता है जो पाठ्यचर्या की जांच–परख कर सुझाव प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार से सूक्ष्म स्तर पर पाठ्यकम मूल्यांकन प्रक्रिया निम्नलिखित आरेख के अनुसार चलती है–

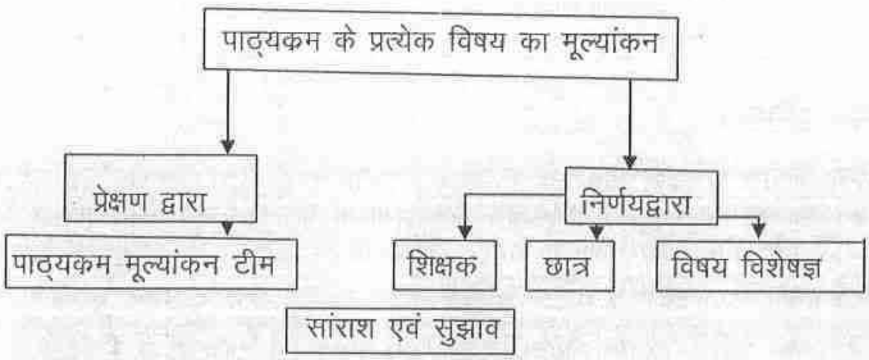

सूक्ष्म स्तर पर पाठ्यकम मूल्यांकन प्रकिया

2. **बृहदस्तर पर मूल्यांकन प्रकिया** (Evaluation process a macro level)

इसके द्वारा सम्पूर्ण पाठ्यचर्या की प्रभाविता का मूल्यांकन निम्नलिखित पदों में किया जाता है–

1. शिक्षार्थी का उद्देश्यपूर्ण अधिगम – छात्र कोर्स पूरा करके कही पर नौकरी कर रहे हैं।
2. मालिक, जहॉ शिक्षार्थी कार्यरत है अर्थात कर्मयुक्त व्यक्तियों (शिक्षार्थी) से मालिक कितने सन्तुष्ट हैं।
3. विषय विशेषज्ञ – इनके द्वारा यहॉ पता लगया जाता है कि पाठ्यचर्या की विषय वस्तु केसी है।
4. प्रधानाचार्य। शिक्षक – इनके द्वारा यहा पता लगया जाता है कि स्कूल में पाठ्यवस्तु को कितना महत्व दिया जाता है।
5. पाठ्यचर्या विशेषज्ञ – इनके द्वारा यहा पता लगया जाता है कि पाठ्यचर्या की विषय वस्तु उचित है या नहीं।
6. माध्यमिक। उच्चतर शिक्षा बोर्ड – बोर्ड द्वारा इसका निर्णया होता है कि यहॉ पाठ्यचर्या लागू कि जाए या नहीं।

उपरोक्त पदों के द्वारा जो सारांश एवं सुझाव प्राप्त होते हैं उनके आधार पर प्रतिवेदन तैयार कर पाठ्यचर्या निर्माणकत्ताओं की समिति द्वारा पाठ्यचर्या का परिवर्तन एवं परिवर्धन किया जाता है। इस प्रकार से यह प्रक्रिया वृहत्तर स्तर पर मूल्यांकन प्रक्रिया कहलाती है।

वृहत्तर स्तर पर पाठ्यचर्या मूल्यांकन (Macro Level)

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की प्रभावित का मूल्यांकन

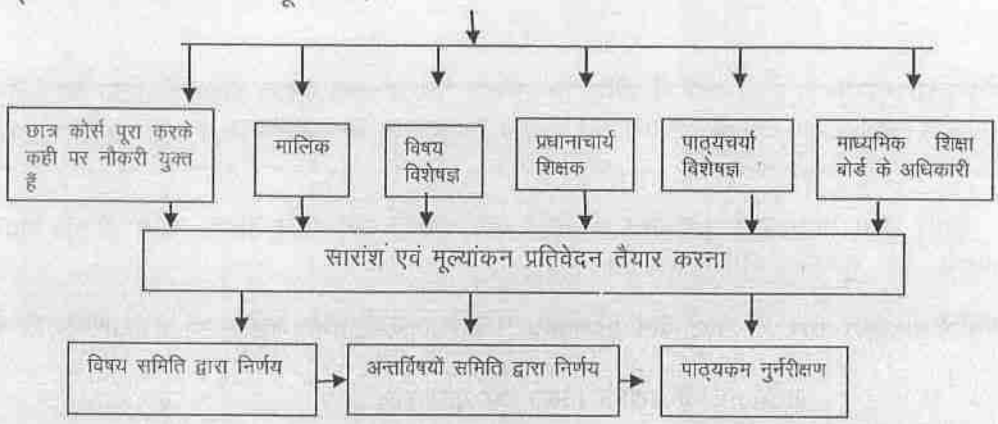

3.8.4 पाठ्यचर्या मूल्यांकन प्रतिमान

मूल्यांकन, पाठ्यचर्या विकास का एक आवश्यक घटक है। मूल्यांकन के द्वारा मूल्यांकनकर्ता के पास आकड़े एकत्रित होते है, इन आकड़ों की सहायता से किसी पाठ्यचर्या के बारे में निर्णय लिया जाता है कि उसे स्वीकार किया जाए, परिवर्तित किया जाए अथवा समाप्त किया जाए। विद्वानों ने पाठ्यचर्या मूल्यांकन के कई प्रतिमान प्रस्तुत किये है,जिनमें से टायलर प्रतिमान प्रमुख है–

टायलर प्रतिमान को 'आठ वर्षीय अध्ययन' प्रतिमान भी कहा जाता हैं। टायलर के निर्देशन में यह अध्ययन 1933 से 1942 तक किया गया। यह अध्ययन पाठ्यचर्या विकास की सम्पूर्ण प्रकिया से सम्बन्धित था, जिसमें मूल्यांकन एक अनिवार्य अंग था। अध्ययन के विभिन्न परीक्षणों, मापनिगों,अनुसूचियों,जॉच–पत्रों,प्रश्नावलियों,विद्यार्थी अभिलेखों एवं अन्य माध्यगों का उपयोग प्रदत्त एकत्रित करने के लिए किया गया।

टायलर ने बताया कि जो व्यक्ति पाठ्यचर्या की खोज में शामिल हों, उन्हें(1) विद्यालय के उद्देश्य,(2)उद्देश्यों से सम्बन्धित शैक्षिक अनुभवों,(3)इन उद्देश्यों का संगठन एवं(4)उद्देश्यों के मूल्यांकन को अवश्य परिभाषित करना चाहिए। उसने बताया कि पाठ्यचर्या नियोजकों को इन सामान्य उद्देश्यों की पहचान विषयवस्तु, शिक्षार्थियों एवं समाज से प्राप्त प्रदत्तों से की जाती हैं। कई सामान्य उद्देश्यों की पहचानकर पाठ्यचर्या नियोजकों द्वारा उन्हें दो प्रकार की जॉचों, यथा–विद्यालय के अवलोकन एवं अधिगम के मनोविज्ञान से जॉचकर परिष्कृत किया जाता था। उसने अनुदेशन उद्देश्य शब्द का उपयोग किया था।

टायलर के अनुसार, "अधिगम अनुभवों के अन्तर्गत पूर्व अनुभवों एवं शिक्षार्थी प्रत्यक्षणों दोनों को शामिल किया जाना चाहिए। शिक्षक जो अधिगम एवं मानव विकास के बारे में जानते हैं, उनके सन्दर्भ में भी अधिगम अनुभवों का चयन किया जाना चाहिए।"

टायलर के अनुसार, पाठ्यचर्या संगठन के तत्व जैसे–विचारों, संकल्पनाओं मूल्यों एवं कौशलों इत्यादि को धागों के रूप में बुना जाना चाहिए ताकि पाठ्यचर्या रूपी वस्त्र का निर्माण हो सके। उसने पाठ्यचर्या विकास में मूल्यांकन को महत्वपूर्ण माना। मूल्यांकन द्वारा इस बात का पता चलता है कि अधिगम अनुभवों से वांछित परिणाम प्राप्त हुए अथवा नहीं। मूल्यांकन से यह मालूम होता है कि कार्यकम प्रभावी था अथवा अप्रभावी । यह आवश्यक हैं कि मूल्यांकन सभी उद्देश्यों से सम्बन्धित हो। टायलर ने मूल्यांकनकर्ताओं के लिए निम्नलिखित अनुशंसाए अध्ययन के आधार पर की थी–

- विस्तृत लक्ष्य अथवा उद्देश्य सीपित किया जाय।
- उद्देश्यों को वर्गीकृत किया जाय।
- उन स्थितियों का मूल्यांकन किया जाय, जिनमें उद्देश्यों की उपलब्धि दिखाई जा सके।
- मापन तकनीकों को विकसित किया जाय अथवा उनका चुनाव किया जाय।

- शिक्षार्थि के निष्पादन के आंकड़े इक्ट्ठा किया जाय और
- व्यवहारिक रूप से कहे गए उद्देश्यों से आंकड़े की तुलना की जाय।

टायलर प्रतिमान का रेखा चित्रण निम्नवत है--

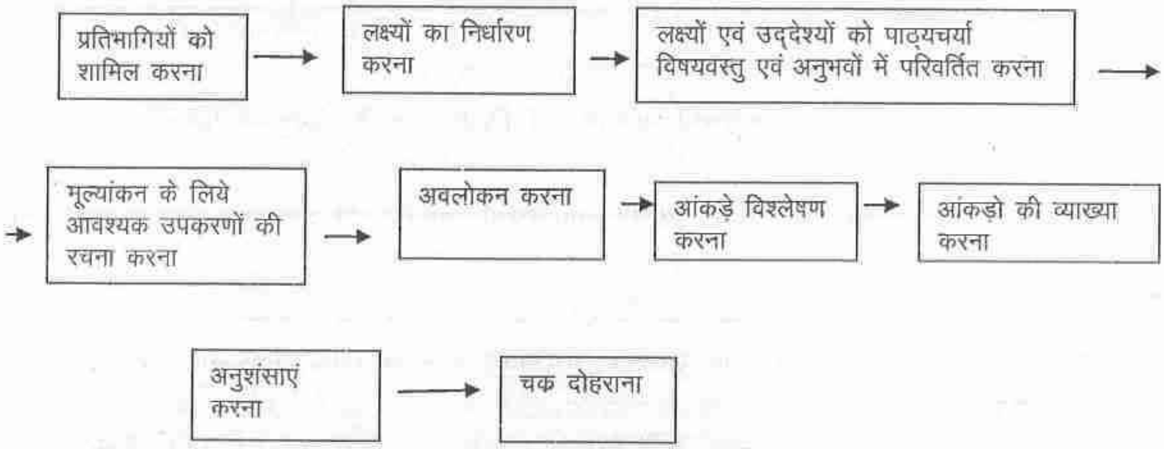

आरेखः टायलर मूल्यांकन प्रतिमान

3.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में पाठ्यचर्या में कार्य के स्थान का उल्लेख किया गया है। इसके अंतर्गत कार्यो का वर्गीकरण एवं विकासात्मक कार्य का वर्णन समाहित है। व्यापक दृष्टि कोण के आधार पर कार्य को तीन प्रमुख वर्गों शैक्षिक क्रियाएं: पाठ्यसहगामी और रूचिकार में वर्गीकृत किया गया है। विकासात्मक कार्यों में प्रारम्भिक बाल्यावस्था, मध्य बाल्यावस्था एव किशोरावस्था का वर्णन है। इसी इकाई में ज्ञान के एकीकरण के साथ ही कौशलों के विकास पर प्रकाश डाला गया है। पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन का उल्लेख किया गया है। पाठ्यचर्या का निहातार्थ (तात्पर्य) समझाते हुए पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन का उल्लेख किया गया है। पाठ्यचर्या में मूल्यों के अंतर्गत भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति के आधार पर मूल्य की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। मूल्य संबंधी भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारण का उल्लेख करते हुए दोनों दृष्टिकोणों में समन्वय की व्याख्या की गई है। मूल्यों के प्रति मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों का उल्लेख करते हुए भारतीय संविधान में निहित मूलभूत मूल्यों का वर्णन किया गया है। पाठ्यचर्या के निर्धारकों का उल्लेख करते हुए पाठ्यचर्या मूल्यांकन के अंतर्गत मूल्यांकन के प्रमुख क्षेत्र, मूल्यांकन की विशेषताएं पाठ्यचर्या मूल्यांकन के लाभ, पाठ्यचर्या मूल्यांकन की प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या मूल्यांकन के टायलर प्रतिमान को समझाया गया है।

3.12 अभ्यास कार्य

- पाठ्यचर्या में कार्य की स्थान की तर्क संगत विवेचना कीजिए।
- पाठ्यचर्या में पाठ्यसहगामी क्रियाओं के महत्व की विवेचना करते हुए विभिन्न प्रकार की पाठ्यसहगामी क्रियाओं को समझाइये।
- मानव जीवन में रूचिकार्य के महत्व की विवेचना कीजिए।
- विकासात्मक कार्यों से क्या तात्पर्य हैं ? हेविग हर्स्ट के अनुसार विकासात्मक कार्यों का वर्णन कीजिए।
- कौशलों के विकास हेतु माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या में किन–किन विषयों की व्यवस्था होनी चाहिए ? तर्क सहित व्याख्या कीजिए।
- "ज्ञान को समग्र रूप में प्रस्तुत करना ही एकीकरण है।" कथन की व्याख्या कजिये।
- "पाठ्यचर्या क्रियान्वयन शिक्षण व्यवस्था का महत्वपूर्ण घटक है।" समझाइये।
- 'मूल्य' की अपने शब्दों में व्याख्या कीजिए।
- मूल्य संबंधी भारतीय अवधारणा समझाइये।

- पाठ्यचर्या का निहितार्थ (तात्पर्य) अपने शब्दों में समझाइये।
- पाठ्यचर्या मूल्यांकन की प्रक्रिया समझाते हुए टायलर प्रतिमान की व्याख्या कीजिए।

3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पाठक, आर.पी. एवं भारद्वाज पाण्डेय, अमिता (2012). **पाठ्यचर्या निर्देशन एवं तुलनात्मक शिक्षा का आधार** , नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- पाल, हंसराज (1998). **पाठ्यचर्या आधार एवं सिद्धांत**, इन्दौरः स्कालर्स पब्लिशिंग हाउस, 241–खजूरी बाजार।
- भास्कर, पंकज एवं सिंह, सरिता (2016). **पाठ्यचर्या विकास एवं विद्यालय**, आगराः राखी प्रकाशन प्रा.लि.।
- यादव, सियाराम (2014). **पाठ्यक्रम विकास**, आगरा–2 : श्री विनोद पुस्तक मन्दिर।
- यादव, संगीता एवं सिंधू पूनम (2014). **पाठ्यक्रम विकास और अनुदेशन**, नई दिल्लीः अर्जुन पब्लिकशिंग हाउस।